अग्निशिखा एवम् पुरोधा

अखिल भारतीय पत्रिका

नवम्बर २०२३

कृष्ण-लीला

अग्निशिखा एवम् पुरोधा नवम्बर २०२३ वर्ष १, अंक ४, पूर्णांक ४

विषय-सूची
'कृष्ण-लीला'

सन्देश/सम्पादकीय		३
कृष्ण-लीला		५
श्रीकृष्ण—शाश्वत देवत्व		१७
श्रीकृष्ण के विषय में		२०
पुरोधाः दैनन्दिनी		२५
एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	२८
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : निष्काम भाव पैदा करो	नवजातजी	३०
दक्षिण की मीरा	श्री सुबोध	३२
एक बार रिक्त हो जाऊँ! (कविता)	कंचन 'मैत्री' से साभार	३७
बस आवरण हटाने की ज़रूरत है	नलिनीकान्त गुप्त	३८
कुसुम्बी सारी	श्री सुन्दरम्	४१
कुछ कहना चाहती हो प्रिये?	वन्दना	४८

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सें मार्तें स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

मुखपृष्ठः

बाँसुरी भगवान् की पुकार है। शंख उपलब्धि के लिए पुकार है। मोर आध्यात्मिक विजय का प्रतीक है। —*श्रीअरविन्द*

सन्देश

अधिकतर मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति बाह्य आश्रय की, अर्थात् उनसे बाहर विद्यमान किसी श्रद्धास्पद वस्तु की अपेक्षा करती है। उन्हें अपनी उन्नति के लिए ईश्वर की बाह्य मूर्ति या मानव-रूप प्रतिनिधि—अवतार, पैगम्बर या गुरु—की आवश्यकता होती है। अथवा उन्हें इन दोनों की ही आवश्यकता होती है और दोनों को ही वे अंगीकार करते हैं। मानव आत्मा की आवश्यकता के अनुसार भगवान् अपने-आपको देवता, मानवरूपी भगवान् या सीधी-सादी मानवता के रूप में अभिव्यक्त करते हैं और अपनी प्रेरणा का सञ्चार करने के लिए, साधन के तौर पर, उस घने परदे को प्रयोग में लाते हैं जो देवाधिदेव को अति सफलतापूर्वक छिपाये रहता है। CWSA खण्ड २३, पृ. ६४

सम्पादकीय : त्रेता तथा द्वापर युग के दो अवतार, राम और कृष्ण—ये दो नाम भारतीयों के मन, उनके विचार, उनकी कल्पना तथा आत्मा में रचे-बसे हैं। इनके बिना भारत—भा–रतः—(प्रकाश में रत) न रहेगा। रामायण तथा महाभारत यहाँ के बच्चे-बच्चे की घुट्टी में पड़ी होती है।

आइये, इस अंक में हम श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ की दृष्टि से श्रीकृष्ण की लीला को समझने का प्रयास करें।

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५४वाँ वर्ष चल रहा है।

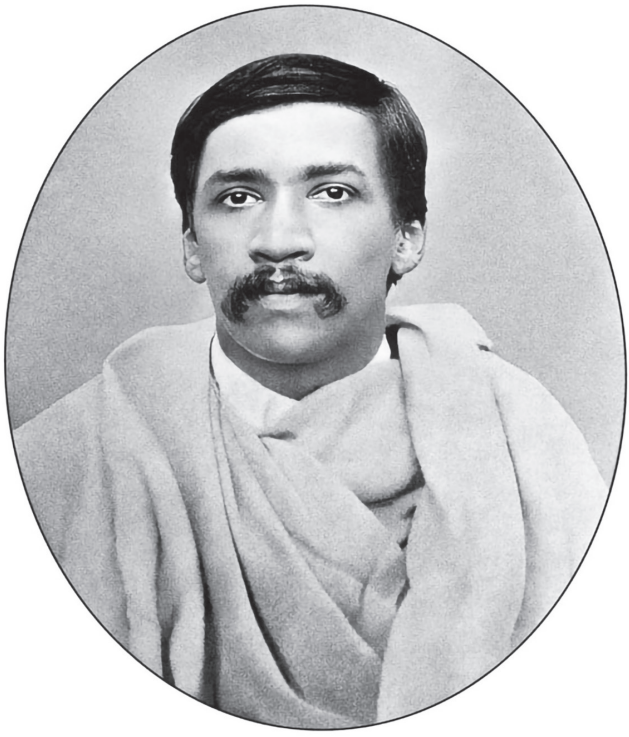

गीता में अर्जुन तथा श्रीकृष्ण, अर्थात् मनुष्य और भगवान् को किसी कुटी में तपस्यारत नहीं बल्कि योद्धा के रूप में तथा कुरुक्षेत्र के कोलाहलपूर्ण युद्ध में अश्वों की वल्गा थामे *गीता-दर्शन* प्रदान करते हुए दर्शाया गया है। अतः, *गीता* के आचार्य श्रीकृष्ण न केवल मनुष्य में स्थित वे 'प्रभु' हैं जो ज्ञान के 'शब्द' प्रदान करते हैं बल्कि मनुष्य में स्थित वे 'प्रभु' भी हैं जो समस्त कर्म-जगत् का सञ्चालन करते हैं और जिनके द्वारा और जिनके लिए सारी मानवता का अस्तित्व है, जो यहाँ पृथ्वी पर संघर्ष और परिश्रम करती है और साथ ही उन्हीं 'प्रभु' की ओर सारा मानव-जीवन अग्रसर होता है और प्रगति करता है। 'वे' ही कर्म तथा समर्पण के गुप्त स्वामी तथा समस्त मानवजाति के परम सखा हैं।

CWSA खण्ड १९, पृ. १९ **श्रीअरविन्द**

कृष्ण-लीला

दिव्य बालक कृष्ण

कृष्ण वैश्व देवत्व तथा अन्तर्हित देवत्व, दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे जिनसे हम अपनी आन्तरिक सत्ता में और साथ ही इस अभिव्यक्त जगत् की प्रत्येक रचना में भी मिल सकते हैं।

और क्या तुम जानते हो कि उन्हें हमेशा एक बालक के रूप में क्यों दर्शाया जाता है? इसलिए कि वे हमेशा प्रगति करते रहते हैं। इस हद तक कि जैसे-जैसे जगत् पूर्ण बनता जाता है, उनकी क्रीड़ा भी पूर्ण से पूर्णतर होती जाती है—बीते कल की क्रीड़ा आगामी कल की क्रीड़ा नहीं रहेगी; जिस अनुपात में जगत् उनकी क्रीड़ा को प्रत्युत्तर देने और भगवान् के साथ उसका उपभोग करने के योग्य बनता जायेगा उसी अनुपात में उनकी क्रीड़ा अधिकाधिक सामञ्जस्यमय, अनुग्रहपूर्ण तथा हर्षयुक्त बनती चली जायेगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १५

बंसी बजैया

बंसी वाला बालक श्रीकृष्ण है, भागवत आनन्द-लोक से प्रभु नीचे जगत्-लीला में अवतरित हुए; उनकी बंसी की धुन उस संगीत का आवाहन है जो इस मर्त्य जगत् के जीवन की निम्नतर अज्ञानी क्रीड़ा को रूपान्तरित करना चाहता है और उसके स्थान पर अपने भागवत आनन्द को लाकर प्रतिष्ठित करना चाहता है। तुम्हारे अन्दर की वह चैत्य सत्ता थी जिसने पुकार को सुना और बाद में उसके पीछे-पीछे चली।

*

मेरे ख़याल से वह भागवत 'प्रेम' तथा 'आनन्द' के प्रभु श्रीकृष्ण का चित्र है—और उनकी बाँसुरी भौतिक सत्ता को जड़-भौतिक जगत् की आसक्तियों से निकाल कर उस परम 'प्रेम' तथा 'आनन्द' की ओर मोड़ देती है।

*

राधा के साथ कृष्ण 'भागवत प्रेम' का प्रतीक हैं। बाँसुरी 'भागवत प्रेम' की पुकार है; मोर 'विजय' का प्रतीक है।

CWSA खण्ड ३०, पृ. १५६-५७

भगवान् का मानवता के साथ सम्बन्ध

... महाभारत के महान् युद्ध के पीछे जो मानव कृष्ण उपस्थित हैं वे वस्तुतः प्रतीकात्मक हैं। वे युद्ध के नायक से कहीं बढ़ कर हैं, वे हैं सचमुच पृथ्वी के गुह्य केन्द्र तथा गुप्त पथ-प्रदर्शक।

महाभारत का युद्ध मनुष्यों तथा राष्ट्रों के एक पूरे जगत् का आन्दोलन है, उनमें से कुछ सहायक बने, जिन्होंने कृष्ण को अपना नेता माना, यद्यपि उसमें उनका कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं था; कुछ उनके विरोधी बने, उनके सम्मुख कृष्ण भी शत्रु के रूप में प्रकट हुए, लेकिन इसके पीछे भी वस्तुतः रहस्य ही था। कइयों को उन्होंने संघर्ष के लिए भड़काया भी; सचमुच इसके पीछे की भावना यह थी कि मानव अपने पुराने रूढ़िगत जगत् और पाप-पुण्य की परम्परागत भावनाओं से मुक्त हो सके जिसकी जड़ें उसके अन्दर दूर-दूर तक फैली हुई हैं। और कई जगत् में नयी सोच लाने के प्रतिनिधि थे; उनके लिए कृष्ण उनके परामर्शदाता, सहायक, मित्र बने। धरती तो अपने ढर्रे पर चलती चली जाती है, और जब-जब शत्रु का हाथ ऊपर उठता है, तब-तब अवतार धीमे से, बीच-बीच में सहायता के लिए प्रकट हो जाते हैं; मनुष्य उन्हें समझ तक नहीं पाते। यहाँ तक कि महाभारत में स्वयं अर्जुन—कृष्ण का परम मित्र तथा मुख्य सहायक—भी यह न जान पाया कि वह मात्र एक यन्त्र है और अन्त में उसे यह स्वीकार करना पड़ा कि उसने अपने दिव्य सखा को नहीं पहचाना। उसने श्रीकृष्ण से ज्ञान पाया, उनकी शक्ति की सहायता पायी, उनका वह प्रेमपात्र बना, उनकी भागवत प्रकृति को न पहचानने पर भी अर्जुन ने श्रीकृष्ण की आराधना की; लेकिन औरों की तरह वह भी अपने अहं से अछूता न था तथा श्रीकृष्ण की सीख, उनकी महानता और उनके दिग्दर्शन को भी अर्जुन ने तब तक सामान्य रूप में ही लिया जब तक कि कुरुक्षेत्र के भयानक युद्ध में सभी फँस न गये। तब अवतार ने अपना विराट्-रूप अर्जुन को दर्शाया, उसके पहले वे उसके सारथि-मात्र थे, वे युद्ध में हिस्सा तक न ले रहे थे; और यह भी ध्यान देने की बात है कि विराट्-रूप के दर्शन केवल अर्जुन ने किये। श्रीकृष्ण ने अपने अन्य चुने हुए लोगों को भी उसके दर्शन नहीं कराये।...

अतः, श्रीकृष्ण थे मानवता के साथ व्यवहार करने वाले देवता के प्रतीक।
CWSA खण्ड १९, पृ. १७-१८

लीलामय श्रीकृष्ण

... इस योग की सर्वोच्च उपलब्धि तब होती है जब तुम इस तथ्य को जान लो कि सारा जगत् अनन्त दिव्य व्यक्तित्व की मात्र अभिव्यक्ति और लीला है, जब तुम सबमें निर्वैयक्तिक *सद् आत्मन्* को नहीं—जो अभिव्यक्त जगत् का आधार है, यद्यपि तुम उस ज्ञान को भी नहीं भूलते, बल्कि उन श्रीकृष्ण को देखते हो जो सबके आधार में होते हुए भी अव्यक्त और व्यक्त दोनों के परे हैं। *सद् आत्मन्* के परे होता है *असत्* जिसे बौद्ध शून्यवादी *शून्यम्* कहते हैं और उस शून्यम् के परे है *परात्पर पुरुष—पुरुषो वरेण्यः आदित्यवर्णः तमसः परस्तात्*। इन्होंने ही अपनी सत्ता से इस जगत् को सृष्ट किया और ये ही सर्वव्यापी हैं, ये ही अनन्त और सान्त ईश्वर, शिव तथा नारायण के रूप में इसे धारण करते हैं। यहीं लीलामय श्रीकृष्ण अपने प्रेम के द्वारा हम सभी को अपने प्रति आकृष्ट करते हैं, अपने प्रभुत्व द्वारा हम पर नियन्त्रण रखते हैं और इस बहुविध जगत् में हर्ष, शक्ति और सौन्दर्य की अपनी सनातन लीला रचते हैं।

यह जगत् सच्चिदानन्द का खेल है। एक दिन तुम देखोगे कि स्वयं जड़-भौतिक जड़ नहीं है, कोई विषय-वस्तु नहीं है बल्कि चेतना का ही एक रूप है, गुण है जिसे इन्द्रिय-ज्ञान अनुभव करता है। स्वयं घनत्व गुण, संहति तथा धृति यानी सामञ्जस्य तथा सचेतनता का संयोजन है, और कुछ नहीं। जड़-भौतिक, प्राण, मन और मन से परे भी जो कुछ है, सब श्रीकृष्ण है, अनन्तगुण ब्रह्म है जो संसार में सच्चिदानन्द के रूप में लीला कर रहे हैं। जब हमें इस तथ्य की उपलब्धि हो जायेगी, जब हम इस जगत् में सुरक्षित तथा सतत रूप से निवास करेंगे तब दुःख तथा पाप, भय, भ्रान्ति, आन्तरिक संघर्ष तथा पीड़ा—सभी कुछ पूरी तरह से हमारी सत्ता से बाहर निकाल दिये जायेंगे।

CWSA खण्ड १३, पृ. ७६-७७ **श्रीअरविन्द**

अवतार का मूल्य

... मुझे ऐसा लगता है कि आधुनिक लोग जो अवतार की जीवन-चरित-सम्बन्धी और ऐतिहासिक बातों पर, अर्थात् उनके जीवन के बाहरी तथ्यों पर, उनके बाहरी जीवन की घटनाओं पर ज़ोर देते हैं उनमें एक मौलिक भूल करते

हैं। महत्त्वपूर्ण चीज़ है वह आध्यात्मिक सत्य, शक्ति और प्रभाव जो उनके साथ आते हैं अथवा जिन्हें वह अपने कर्म और जीवन के द्वारा नीचे उतार लाते हैं। सबसे पहले, आध्यात्मिक मनुष्य के जीवन में इस बात का कोई मूल्य नहीं कि उसने क्या किया अथवा अपने युग के मनुष्यों की दृष्टि में बाहर से देखने में वह क्या था (यही चीज़ें हैं जो इतिहास और जीवन-चरित बताते हैं, ठीक है न?), बल्कि महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह अन्दर क्या था और उसने क्या किया; केवल यही चीज़ है जो उसके बाहरी जीवन को कुछ महत्त्व प्रदान करती है। उसका आन्तरिक जीवन ही उसके बाहरी जीवन को एक शक्ति देता है जो उसमें हो सकती है और आध्यात्मिक मनुष्य का आन्तरिक जीवन एक विशाल और पूर्ण वस्तु होता है और, कम-से-कम महान् पुरुषों में, अर्थपूर्ण चीज़ों से इतना अधिक परिपूर्ण, इतने घने रूप में भरा होता है कि कोई भी जीवनी-लेखक या इतिहास-लेखक उन सबको पकड़ पाने और कह पाने की कभी भी आशा नहीं कर सकता। उसके बाहरी जीवन में जो कुछ महत्त्वपूर्ण होता है वह इसलिए होता है कि वह उस चीज़ का प्रतीक होता है जो उसने स्वयं अपने अन्दर उपलब्ध की है और हम और भी आगे बढ़ कर यह भी कह सकते हैं कि उसका आन्तरिक जीवन भी उसके पीछे विद्यमान भगवत्तत्त्व की क्रिया की एक अभिव्यक्ति, एक जीवन्त प्रतिमूर्ति के रूप में ही महत्त्वपूर्ण होता है। यही कारण है कि हमें यह खोज करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या श्रीकृष्ण-सम्बन्धी कहानियाँ पृथ्वी पर किये गये उनके कार्यों का, चाहे जितना भी शिथिल वर्णन हैं अथवा जो कुछ श्रीकृष्ण थे और मनुष्यों के लिए हैं उसका, श्रीकृष्ण के रूप में अभिव्यक्त भगवान् का प्रतीकात्मक चित्रण है। बुद्ध का त्याग, मार के द्वारा उन्हें प्रलुब्ध किया जाना, बोधि-वृक्ष के नीचे उनकी ज्ञान-प्राप्ति ऐसे ही प्रतीक हैं और उसी तरह ईसा का कुमारी से जन्म, रेगिस्तान में प्रलोभन और क्रॉस पर झुलाया जाना भी वैसे ही प्रतीक हैं; यदि वे सावधानी के साथ अभिलिखित ऐतिहासिक घटनाएँ न भी हों फिर भी उनका जो कुछ भी अर्थ है उसी के कारण वे सत्य हैं। ईसा और बुद्ध के विषय में जो कुछ बाहरी तथ्य वर्णित हैं वे अन्य बहुत-से लोगों के जीवन में घटित तथ्यों से बहुत अधिक नहीं हैं—फिर भला वह कौन-सी चीज़ है जो बुद्ध या ईसा को आध्यात्मिक जगत् में बहुत ऊँचा स्थान प्रदान

करती है? उन्हें जो यह स्थान मिला उसका कारण यह था कि उनके द्वारा कुछ ऐसी चीज़ अभिव्यक्त हुई जो किसी भी बाहरी घटना या किसी भी शिक्षा से बहुत अधिक थी। प्रामाणिक इतिहास उसका बहुत थोड़ा-सा अंश ही हमें देता है और फिर भी केवल वही चीज़ महत्त्व रखती है।
CWSA खण्ड २८, पृ. ४७८-७९

योगेश्वर

भगवद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान दिया, इन्द्रदेव के पुत्र तथा पाण्डवों में श्रेष्ठ अर्जुन को...

अर्जुन हैं श्रीकृष्ण के घनिष्ठ सखा। जो भी श्रीकृष्ण के समकालीन हैं और समान कार्य के लिए धरा पर उतरे, उन्होंने अपने निजी सामर्थ्य और पिछले कर्मों के द्वारा, मानव-रूप में धरा पर उतरे हुए परम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के साथ विभिन्न सम्बन्ध बनाये। उद्धव हैं श्रीकृष्ण के भक्त, सात्यकी उनके निष्ठावान् अनुचर तथा साथी, राजा युधिष्ठिर उनके सम्बन्धी और मित्र जो उन्हीं के परामर्श पर क्रिया करते हैं, लेकिन अर्जुन के जैसा घनिष्ठतम सम्बन्ध कोई भी उनसे जुड़ा नहीं पाया। उस युग में जितना सच्चा-सुखदतम और पवित्रतम सम्बन्ध दो मनुष्यों के बीच हो सकता था वह अर्जुन के सिवाय किसी और के साथ कृष्ण का नहीं था। अर्जुन हैं श्रीकृष्ण के भ्राता, उनके अन्तरंगतम मित्र, प्राणों से भी अधिक प्रिय उनकी भगिनी सुभद्रा के पति। *गीता* के चौथे अध्याय में प्रभु ने इस घनिष्ठता का संकेत दिया है और यही कारण है कि *गीता* का चरम रहस्य उजागर करने के लिए उन्होंने केवल अर्जुन को ही क्यों चुना:

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।। (४.०३)

"मैंने तुम्हारे सम्मुख यह पुरातन और विस्मृत योग का उद्घाटन इसलिए किया है क्योंकि तुम मेरे अन्तरतम सखा और भक्त हो; कारण, यह योग जगत् का उत्तम तथा चरम रहस्य है।"

अठारहवें अध्याय में भी उन्होंने अर्जुन को *कर्मयोग* की कुञ्जी थमाते हुए इसी को दोहराया है, वस्तुतः *कर्मयोग* ही *गीता* का सार है:

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। (१८-६४)

"एक बार फिर (हे अर्जुन) तुम मेरे परम 'शब्द' को सुनो, जो सबसे अधिक गुह्य वाणी है। तुम मेरे अत्यधिक प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हें उस पथ के बारे में बतलाऊँगा जो सभी पथों में सर्वोत्तम पथ है।"

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से पृ. ९५-९६

सखा तथा प्रेमी के रूप में श्रीकृष्ण

ईश्वर ने अर्जुन को इसलिए चुना क्योंकि अर्जुन ही भक्त तथा सखा दोनों का मूर्त रूप था। भिन्न-भिन्न प्रकार के भक्त होते हैं। सामान्यतया भक्त शब्द के उच्चारण-मात्र से मन में गुरु-शिष्य के सम्बन्ध का भाव उमड़ता है। निस्सन्देह ऐसी भक्ति के पीछे प्रेम होता है, लेकिन सामान्यतया आज्ञाकारिता, सम्मान तथा तन-मन-प्राण के साथ पूरी तरह से रत भक्ति और निष्ठा इसके विशेष लक्षण और गुण हैं। लेकिन मित्र अपने मित्र के साथ मान-सम्मान नहीं दर्शाता। वे आपस में मज़ाक करते, खेलते और साथ में मौज-मस्ती करते हैं, लाड़-प्यार दर्शाते हैं; खेल-खेल में ताने मारते, अनादर भी कर बैठते हैं, कुछ गाली-गलौज़ भी चल सकती है या अनावश्यक माँगें भी की जा सकती हैं। मित्र हमेशा अपने दोस्त की बात माने यह ज़रूरी नहीं है, हालाँकि अपने मित्र के प्रति अहोभाव रखने वाला सखा उसके गभीर ज्ञान और सच्ची सदिच्छा के द्वारा उसकी बात मानने को तत्पर रहता है, लेकिन फिर भी अन्धविश्वास के साथ नहीं। क्योंकि सम्मान के साथ भी वह उसके साथ वाद-विवाद करता है, शंका जताता है, कभी-कभी तो उसके दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण रखता है। मित्रों के बीच के सम्बन्ध का पहला पाठ है—समस्त भय को दूर कर देना, दूसरा है—सभी बाहरी आदर को तिलाञ्जलि दे देना; मित्रता का पहला और अन्तिम शब्द है—प्रेम। वस्तुतः श्रीकृष्ण द्वारा *गीता* में दिये ज्ञान का उपयुक्त पात्र अर्जुन ही है, वही इस जागतिक आन्दोलन को एक ऐसी मधुर और रहस्यमयी लीला के रूप में समझता है जो प्रेम तथा आनन्द से ओत-प्रोत है, प्रभु को अपने खेल के साथी के रूप में चुनता है और अपनी मित्रता

की डोर से उनको कस कर बाँधे रख सकता है। *गीता* में दिये गये ज्ञान का वही उचित पात्र है जो ईश्वर की महत्ता और शक्ति, उनकी प्रज्ञा की गहराई, यहाँ तक कि उनकी भयावहता तथा विस्मयकारिता को समझता है और फिर भी वह उनसे अभिभूत नहीं होता और बिना भय के, मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ उनके साथ क्रीड़ा करता है।

अन्य सभी तरह के सम्बन्धों में मैत्री का सम्बन्ध खेल के रूप में लिया जा सकता है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध—अगर वह मित्रता पर टिका हो तो बहुत ही सुखद रूप से मधुर बन जाता है; *गीता* का सन्देश सुनाने के समय अर्जुन का ठीक यही सम्बन्ध श्रीकृष्ण के साथ दृढ़ता से बन गया था। "तुम मेरे सर्वोत्तम हितैषी हो कृष्ण! और किसकी शरण में जाऊँ मैं? अपने चिन्तन की शक्ति मैं खो बैठा हूँ, अपने ऊपर आये उत्तरदायित्व के बोझ से मैं थरथरा रहा हूँ, तीव्र दुःख से अभिभूत, मैं सन्देहों के झूले में झूल रहा हूँ कि क्या है मेरा कर्तव्य-कर्म? तुमने ही मेरी रक्षा की है, अब तुम्हीं मुझे परामर्श दो। इस जगत् तथा जगत् के परे के मेरे समस्त कल्याण का भार तुम ले लो, अपने-आपको मैं तुम्हें ही सौंपता हूँ"—ज्ञान पाने की इसी भावना के साथ अर्जुन मानवता के 'सखा' तथा 'सहायक' के पास पहुँचा। माँ का बालक के साथ सम्बन्ध भी मित्रता का अंग बन जाता है। उम्र में बड़े और बुद्धि में ऊँचे वे अपने से छोटे तथा कम प्रबुद्ध सखा को उसी रूप में लेते हैं जैसे एक माँ अपने बच्चे के लिए करती है, वह उसे सुरक्षा प्रदान करती है, उसकी देखभाल करती है, हमेशा उसे अपनी गोद में लिये रहती है और हर एक संकट और अशुभ से उसकी रक्षा करती है। श्रीकृष्ण उसके प्रति अपना माँ-जैसा ममतामय प्रेम अभिव्यक्त करते हैं जो उनका प्रियतम सखा है। वह मैत्री न केवल माँ के वात्सल्य के झरने बहाती है बल्कि प्रियतम के तीव्र प्रेम की आतुरता भी लिये रहती है। मित्र हमेशा एक-दूसरे के साथ के लिए तरसते हैं, अलग हो जाने पर गहरे दुःख में डूब जाते हैं, अपने प्रियतम के मधुर स्पर्श से प्रेमी पुलकित हो जाता है और वे एक-दूसरे के लिए अपने जीवन की बलि देने में भी बहुत हर्षित होते हैं। सेवा करने का सम्बन्ध भी तब बहुत मधुर हो जाता है जब वह मित्रता का अंग होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि व्यक्ति परम देवत्व से जितना अधिक प्रिय सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, उतना ही

अधिक सख्यभाव बढ़ता है, उतना ही अधिक वह *गीता* के ज्ञान को ग्रहण करने में अधिकाधिक समर्थ बनता जाता है।

कृष्ण का मित्र अर्जुन, महाभारत का मुख्य नायक है; *गीता* में कर्मयोग की शिक्षा ही मुख्य शिक्षा है; ज्ञान, भक्ति तथा कर्म—ये तीनों पथ परस्पर असंगत नहीं हैं। कर्मयोग के पथ पर, ज्ञान पर आधारित कर्म करना, भक्ति द्वारा प्राप्त शक्ति के साथ कार्य करना, भगवान् को पाने के उद्देश्य के साथ, 'उनके' आदेश पर, 'उनके' साथ ऐक्य में बने रह कर कर्म करना—यही है *गीता* की शिक्षा, उसका सार। जो लोग जगत् के दुःखों से भय खाते हैं, जीवन के प्रति वैरागी बन बैठे हैं, प्रभु की लीला में कोई रस नहीं लेना चाहते, इस लीला को छोड़ कर, स्वयं को अनन्तता की गोद में छिपा लेना चाहते हैं, उनके लिए पथ भिन्न है। इस तरह की कोई भी भावना या इच्छा बलशाली योद्धा और मनुष्यों में वीरतम अर्जुन के मन में कतई न थी। श्रीकृष्ण ने अपना परम रहस्य किसी शान्त तपस्वी या विद्वान् दार्शनिक के सम्मुख प्रकट नहीं किया, अहिंसा के पुजारी किसी ब्राह्मण को इसके लिए नहीं चुना; ज़बरदस्त शक्ति तथा पराक्रम रखने वाला क्षत्रिय योद्धा ही इस अतुलनीय ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त पात्र के रूप में चुना गया। केवल वही इस शिक्षा के गभीरतम रहस्यों को अपने अन्दर धारण करने में समर्थ था जो जीवन के युद्ध में जय हो या पराजय—हर एक अवस्था में अचञ्चल और शान्त रह सकता था। यह आत्मा बलहीन के द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती—*नायमात्मा बलहीनेन लभ्यते।* मुक्ति की कामना करने वाला नहीं, बल्कि जो भगवान् को पाने की अभीप्सा करता है वही भगवान् की निकटता का रस पा सकता है, अपनी सच्ची प्रकृति में स्वयं को शाश्वत रूप से मुक्त अनुभव कर सकता है।... वही गुणातीत हो सकता है जो अहंकार के तामसिक तथा राजसिक रूपों को त्याग कर, सात्त्विक अहंकार से भी बँधा रहना नहीं चाहता। क्षत्रिय के विधान का अनुसरण कर अर्जुन ने अपनी राजसिक प्रवृत्तियों को सम्पन्न किया, और साथ ही, रजस् की शक्ति द्वारा—सात्त्विक आदर्श को स्वीकार कर—वह सत्त्व की ओर मुड़ गया। ऐसा व्यक्ति *गीता* की शिक्षा को पाने के लिए सर्वोत्तम पात्र है।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से पृ. ९७-९९

मानव-भगवान् कृष्ण

गीता के सारतत्त्व को ग्रहण करने के लिए हमें महाभारत के उन मानव-रूप भगवान् श्रीकृष्ण के केवल आध्यात्मिक प्रतीक के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहिये जो इस कुरुक्षेत्र की संग्राम-भूमि में हमारे सामने अर्जुन के गुरु-रूप में उपस्थित हैं। ऐतिहासिक श्रीकृष्ण भी थे, इसमें कोई सन्देह नहीं। छान्दोग्य उपनिषद् में, पहले-पहल, यह नाम आता है और वहाँ इनके बारे में जो कुछ मालूम होता है वह इतना ही है कि आध्यात्मिक परम्परा में ब्रह्मवेत्ता के रूप में उनका नाम सुप्रसिद्ध था, उनका व्यक्तित्व और उनका जीवन लोगों में इतना व्यापक था कि केवल देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण कहने से ही लोग जान जाते थे कि किसकी चर्चा हो रही है। इसी उपनिषद् में विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र का भी नामोल्लेख है। और, चूँकि यह परम्परा इन दोनों नामों को महाभारत-काल में भी इतने निकट सम्पर्क में रखे हुए थी, इसका कारण यह है कि ये दोनों-के-दोनों ही महाभारत के प्रमुख व्यक्ति हैं, इसलिए हम इस निर्णय पर भली प्रकार पहुँच सकते हैं कि ये दोनों वास्तव में समकालीन थे और यह कि इस महाकाव्य में अधिकतर ऐतिहासिक व्यक्तियों की ही चर्चा हुई है और कुरुक्षेत्र के सम्बन्ध में किसी ऐसी ऐतिहासिक घटना का ही उल्लेख है जिसकी छाप इस जाति के स्मृति-पटल पर अच्छी तरह पड़ी हुई थी। यह बात भी ज्ञात है कि ईसा का जन्म होने से पहले की शताब्दियों में श्रीकृष्ण और अर्जुन पूजे जाते थे; और, यह मान लेने का कुछ कारण है कि यह पूजा किसी ऐसी धार्मिक या दार्शनिक परम्परा के कारण ही होती होगी, जहाँ से *गीता* ने अपने बहुत-से तत्त्वों को, यहाँ तक कि ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय की भित्ति को भी लिया होगा, और शायद यह भी माना जा सकता है कि ये मानव श्रीकृष्ण ही इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक, पुनः संस्थापक या कम-से-कम कोई पूर्वाचार्य रहे होंगे। इसलिए *गीता* का बाह्य रूप बाद में चाहे कुछ बदला भी हो फिर भी यह भारतीय विचारधारा के रूप में श्रीकृष्ण के ही उपदेश का फल है और इस उपदेश का ऐतिहासिक श्रीकृष्ण के साथ तथा अर्जुन और कुरुक्षेत्र के युद्ध के साथ सम्बन्ध केवल कवि की कल्पना ही नहीं है। महाभारत में श्रीकृष्ण एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और अवतार भी; इनकी उपासना और इनके अवतार होने की मान्यता देश में उस समय तक प्रस्थापित

हो चुकी थी जब ईसा के पूर्व (पाँचवीं और पहली शताब्दी के बीच में) महाभारत की प्राचीन कहानी और कविता या महाकाव्य-परम्परा ने अपना वर्तमान रूप धारण किया। इस काव्य में अवतार की बाल-वृन्दावन-लीला की कथा या किंवदन्ती का भी संकेत है जिसे पुराणों ने इतने प्रबल और सतेज आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में वर्णित किया है कि उसका भारत के धार्मिक मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। हरिवंश पुराण ने भी श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया है, इसमें स्पष्ट ही प्रायः उपाख्यान भरे हैं और शायद सब पौराणिक वर्णन हैं ही इन्हीं के आधार पर।

CWSA खण्ड १९, पृ. १५-१६

साकार तथा निराकार

भगवान् न आकार से बँधे हैं न निराकारता से; वे 'स्वयं' को जिज्ञासु के सम्मुख साकार रूप में प्रकट करते हैं। उस रूप तथा आकार में वे अपनी पूर्णता में होते हैं और साथ ही सारे ब्रह्माण्ड पर भी छाये रहते हैं। क्योंकि भगवान् देशातीत, कालातीत हैं, किसी भी वाद-विवाद द्वारा उन तक पहुँचा नहीं जा सकता; देश तथा काल तो उनके खिलौने हैं। अपने काल तथा देश के जाल में फँसी सभी सत्ताओं के साथ वे क्रीड़ा कर रहे हैं। लेकिन उस जाल में कभी हम उन्हें न पकड़ पायेंगे। जब कभी हम इस असम्भावना को अपने तर्कशास्त्र तथा दार्शनिक बहसों से पाने की कोशिश करते हैं, वे मज़ाकिया जाल से छिटक कर, हमारे सामने, हमारे पीछे, हमारे पास और हमसे दूर मुस्कुराते नज़र आते हैं, अपने ब्रह्माण्ड-रूप के डैने फैला देते हैं और ब्रह्माण्ड के परे अपने 'रूप' को भी दरशाते हैं, और तब हमारी सारी बुद्धिमत्ता और तर्क धरे-के-धरे रह जाते हैं। वह जो कहता है कि "मैं उन्हें जानता हूँ," कुछ नहीं जानता। वह जो कहता है, "मैं उसे जानता हूँ, फिर भी उन्हें नहीं जानता," उसी के पास सच्चा ज्ञान होता है।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से पृ. ८८

जगत्-रूप

जो कुछ कारण-जगत् में होना निश्चित है वह सब हमारे देश और काल के परे सूक्ष्म जगत् में प्रतिबिम्बित होता है और भौतिक जगत् के

नियमों के अनुसार, आंशिक रूप में वहाँ अभिव्यक्त और अभिनीत भी होता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, "धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे द्वारा पञ्चत्व को प्राप्त हो ही गये हैं," फिर भी वे सभी कुरुक्षेत्र के युद्ध में उनके सम्मुख जीवित खड़े, युद्ध में पूरी तरह से लगे हुए थे। भगवान् के शब्द न मिथ्या वक्तव्य होते हैं, न ही रूपक। कारण-जगत् में उन्होंने उनका वध कर दिया था, अन्यथा इस जगत् में उनका हनन करना असम्भव होता। हमारा सच्चा जीवन कारण-जगत् में चलता है, बस उसकी छाया-भर इस भौतिक जगत् पर पड़ती है। लेकिन कारण-जगत् में नियम-विधान, देश तथा काल, नाम तथा रूप भिन्न होते हैं। यह 'देश-आत्मा' कारण-जगत् का एक रूप है जो उसके लिए सुस्पष्ट हो जाता है जो योग की दृष्टि से उसे देखता है।

—श्रीअरविन्द की 'बंगला रचनाओं' से पृ. ८९-९०

किसी भी साधक को कभी भी अयोग्यता के और निराशाजनक विचारों को नहीं पोसना चाहिये–ये एकदम से असंगत होते हैं, क्योंकि व्यक्ति की निजी योग्यता तथा गुण उसे सफल नहीं बनाते बल्कि श्रीमाँ की कृपा, उनकी शक्ति तथा उस कृपा के प्रति अन्तरात्मा की स्वीकृति तथा माँ की परमा शक्ति की उसके अन्दर क्रिया ही साधक को सफल बनाती हैं।

अन्धकार-भरे इन सभी विचारों से मुँह मोड़ लो और केवल माँ की ओर ताको, परिणाम तथा अपनी इच्छा की सफलता के लिए अधीर मत बनो, बल्कि श्रद्धा और विश्वास के साथ माँ को पुकारो, उनकी क्रिया को अपने अन्दर शान्ति लाने दो और प्रार्थना करो कि चैत्य उद्घाटन तथा उपलब्धि के लिए तुम्हारी प्यास कभी न बुझने पाये। यह चीज़ निस्सन्देह तथा निश्चित रूप से उस पूर्ण श्रद्धा तथा प्रेम को ले आयेगी जिसे तुम खोज रहे हो।

CWSA खण्ड २९, पृ. ३४-३५

कृष्ण

अन्ततः मुझे मिला इस मधुर और भीषण
जगत् में आत्मा के जन्म का उद्देश्य,
मैंने अनुभव किया पृथ्वी का क्षुधित हृदय जो
अभीप्सा करता है स्वर्ग के परे कृष्ण के चरण।

मैंने देखा है अमर नयनों का सौन्दर्य,
मैंने सुना है प्रिय का मादक वंशी-नाद,
और जाना है मृत्युरहित आनन्द का आश्चर्य
और अपने हृदय में दुःख को, जो है सदा के लिए निर्वाक्।

निकट और निकटतर अब संगीत आ रहा,
विलक्षण हर्षातिरेक से जीवन थरथरा रहा;
सम्पूर्ण प्रकृति है एक विशाल विरमावस्था अनुरक्तिपूर्ण
निज प्रभु के स्पर्श, आलिंगन, तन्मयता की आकांक्षिण।

जीवित रहे विगत युग इस एक क्षण को लक्ष्य कर;
जगत् धड़कता है कृतकृत्य मुझमें अब चिरकाल के अनन्तर।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०८ **श्रीअरविन्द**

श्रीकृष्ण—शाश्वत देवत्व

श्रीकृष्ण सबमें वास करते हैं

न केवल सजीव प्राणियों में बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी हमें नारायण के दर्शन करने चाहियें, शिव का अनुभव करना चाहिये और शक्ति के आलिंगन में स्वयं को समर्पित कर देना चाहिये। जब हमारी आँखें—जिन पर अभी जड़-भौतिक के विचार की ही पट्टी बँधी हुई है—परम 'प्रकाश' की ओर खुलेंगी, तब हम देखेंगे कि कुछ भी निर्जीव नहीं है, बल्कि सभी चीज़ों में वही परम प्राण, मानस, विज्ञान, सत्, चित् और आनन्द समाया हुआ है; भले वह उनमें अभिव्यक्त हो या अनभिव्यक्त, उनमें छिपा हुआ हो या विकसित या विकास की प्रक्रिया में हो या फिर एकदम से अदर्शनीय हो और उसे हम जड़ की संज्ञा दे दें। लेकिन 'हर एक चीज़' सचमुच सजीव ही होती है। सभी चीज़ों में प्रभु का आत्म-सचेतन व्यक्तित्व पनपता रहता है और समय आने पर उसमें से फूट पड़ने में परमानन्द का अनुभव करता है—जैसे फल, फूल, धरती, पेड़, धातु—सभी चीज़ों में वह हर्ष समाया हुआ है और उसके बारे में तुम सचेतन हो सकते हो, क्योंकि सभी में श्रीकृष्ण वास करते हैं। यह मत सोचो कि भौतिक रूप से उन्होंने उनमें प्रवेश किया, क्योंकि सचमुच देश और काल का कोई अस्तित्व ही नहीं है, यह सब तो मानव-दृष्टि के लिए बनाये गये संयोजन और रूढ़ियाँ हैं। वास्तव में, भगवान् की रचनात्मक कला की ये सारी विशेषताएँ हैं—और हम सभी प्रत्येक वस्तु में उस सच्चिदानन्द की अनुभूति पा सकते हैं।
CWSA खण्ड १३, पृ. ७८

श्रीकृष्ण की जगत्-लीला

प्रभु एक हैं, लेकिन वे अपने एकत्व से बँधे हुए नहीं हैं। हम यहाँ उन्हें हमेशा बहु के रूप में अभिव्यक्त होते हुए देखते हैं, इसलिए नहीं कि वे ऐसा करने के लिए बाध्य हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें ऐसा करने में आनन्द मिलता है, और अभिव्यक्ति के परे वे *अनिर्देश्यम्* हैं, यानी, न 'एक' और न 'बहु' के रूप में उनका वर्णन किया जा सकता है। उपनिषद् तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ इसी की चर्चा करते हैं; 'वे' *एकमेवाद्वितीयम्* हैं, लेकिन साथ

ही वे "यह मनुष्य, वह स्त्री, वह नीले पंखोंवाली चिड़िया, यह सिन्दूरी प्रभात" सब कुछ हैं। वे सान्त हैं, साथ ही अनन्त हैं, सभी के अन्दर के 'जीव' वे ही हैं। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, "मैं अश्वत्थ पेड़ हूँ", "मैं मृत्यु हूँ, मैं वैश्वानर अग्नि हूँ, मैं जठराग्नि हूँ, मैं व्यास हूँ, वासुदेव हूँ, मैं ही अर्जुन हूँ।" अपनी सान्त सत्ता में यह सब कुछ उनके चैतन्य की लीला है, अतः सब कुछ वास्तविक है। माया का अर्थ है, विभिन्न परिस्थितियों में प्रभु की अभिव्यक्ति। हम जो कुछ देखते हैं या उनके बारे में जो कुछ सोचते हैं, वे किसी भी तरीक़े से उन सबसे बँधे हुए नहीं हैं। इस माया से, यानी अज्ञान की इसी माया से हमें अपना पीछा छुड़ाना है जो चीज़ों को भगवान् से पृथक् रूप में लेती है, यानी उन्हें चैतन्य नहीं मानती और असीम को हमेशा सीमा में बाँध कर रखना चाहती है। तुम्हें श्रीकृष्ण और गोपियों की वह कहानी तो याद है न कि एक बार जब नारदजी धरती पर उतरे तो उन्होंने कृष्ण को प्रत्येक गोपी के घर में, भिन्न शरीर में उपस्थित पाया, फिर भी वे वही समान श्रीकृष्ण थे। इस कहानी के भक्तिपूर्ण अर्थ के अलावा, जिसको तुम जानते ही हो, यह जगत्-लीला का सुन्दर चित्र भी है। वे सर्व हैं, प्रत्येक हैं, प्रत्यक्षतः भिन्न दीखने वाली प्रत्येक 'प्रकृति' के साथ वे ही प्रत्येक 'पुरुष' हैं, और साथ ही वे पुरुषोत्तम भी हैं जो राधा के साथ हैं, वे ही पराप्रकृति के साथ हैं और वे ही जब चाहें सबको अपने अन्दर समाहित कर सकते हैं और जब चाहें उन्हें अपने से बाहर प्रक्षिप्त भी कर सकते हैं। एक दृष्टिकोण से वे सभी गोपियाँ उनके साथ एक हैं, तदात्म हैं, दूसरे दृष्टिकोण से वे हमेशा भिन्न हैं क्योंकि वे हमेशा उनके अन्दर प्रच्छन्न रहती हैं या उनकी मर्ज़ी के अनुसार अभिव्यक्त होती हैं। इन दृष्टिकोणों के बारे में विवाद करने का कोई अर्थ नहीं है। धीरज धरो, जब तक कि तुम 'प्रभु' के दर्शन न कर लो और स्वयं को और उनको जान न लो। और तब तुम स्वयं ही देख लोगे कि वाद-विवाद और चर्चाएँ कितनी अनावश्यक चीज़ें हैं।

CWSA खण्ड १३, पृ. ८९-९०

जो कृष्ण को, नर में अवस्थित नारायण को नहीं पहचानता,
वह भगवान् को सम्पूर्णतः नहीं जानता। श्रीमाँ

एक रुचिकर क़िस्सा

राधा की प्रार्थना

"राधा की प्रार्थना" श्रीमाँ ने मूल रूप से १२ जनवरी १९३२ में अंग्रेज़ी में लिखी थी। अगले दिन उन्होंने उसका फ़्रेंच में अनुवाद किया। उसके बाद श्रीअरविन्द ने फ़्रेंच का उल्था अंग्रेज़ी में किया।

श्रीमाँ ने यह प्रार्थना एक शिष्या के लिए लिखी थी जो राधा के बारे में एक नृत्य प्रस्तुत करने वाली थी। उसे माँ ने लिखा :

कल मैंने तुमसे राधा के नृत्य के बारे में जो कहा था उसे पूरा करने के लिए मैंने निम्नलिखित टिप्पणी लिखी है जो इस बात का संकेत है कि अन्त में जब राधा, कृष्ण के सामने खड़ी हो तो उसके अन्दर क्या विचार और भाव होने चाहियें :

"मेरे मन का प्रत्येक विचार, मेरे हृदय का हर एक भाव, मेरी सत्ता की हर एक गति, हर एक भावना और हर एक संवेदन, मेरे शरीर का हर एक कोषाणु, मेरे रक्त की हर एक बूँद, सब, सब कुछ तुम्हारा है, पूरी तरह तुम्हारा है, बिना कुछ बचाये तुम्हारा है। तुम मेरे जीवन का निश्चय कर सकते हो या मेरे मरण का, मेरे सुख का या मेरे दुःख का, मेरी ख़ुशी का या मेरे कष्ट का; तुम मेरे साथ जो भी करो, मेरे लिए तुम्हारे पास से जो भी आये वह मुझे भागवत 'आनन्द' की ओर ले जायेगा।"

CWSA खण्ड ३२, पृ. ६६२

श्रीकृष्ण के विषय में
(विचार और सूत्र)

भगवान् बहुत बड़े और निर्दयी 'उत्पीड़क' हैं, क्योंकि वे प्यार करते हैं। तुम इस बात को नहीं समझते, क्योंकि तुमने न तो कृष्ण को देखा है और न तुम उनके साथ खेले हो।

"कृष्ण के साथ खेलने" का क्या अर्थ है? "भगवान् बहुत बड़े और निर्दयी उत्पीड़क हैं", इसका क्या अभिप्राय है?

कृष्ण अन्तरस्थ भगवान् हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वे सर्वोच्च प्रभु के आनन्द और प्रेम का सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कुराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे एक साथ खिलाड़ी, खेल और खेल के सभी साथी, तीनों हैं। और चूँकि यह खेल, परिणामों-सहित पूर्ण रूप से जाना हुआ है, सोचा हुआ, इच्छित, व्यवस्थित तथा अपनी समग्रता में सचेतन रूप से खेला जाता है इसलिए इसमें खेल के आनन्द के सिवाय और किसी चीज़ के लिए स्थान ही नहीं हो सकता। अतएव "कृष्ण को देखने" का अर्थ है, अन्तरस्थ भगवान् को देखना, "कृष्ण से खेलने" का अर्थ है, अन्तरस्थ भगवान् के साथ एक होना तथा उनकी चेतना में भाग लेना। जब तुम इस स्थिति में पहुँच जाओ तो तत्काल दिव्य क्रीड़ा के आनन्द में प्रवेश पा लेते हो। जितना पूर्ण तुम्हारा तादात्म्य होगा उतनी ही पूर्ण तुम्हारी अवस्था होगी।

किन्तु यदि चेतना का कोई एक कोना सामान्य बोध, सामान्य समझ, सामान्य संवेदन को ही बनाये रखे तो तुम दूसरों के कष्ट को देखोगे, तुम इस क्रीड़ा को, जो कि इतने कष्ट का कारण होती है, बहुत निर्दयतापूर्ण पाओगे और तब अन्त में कहोगे कि जो भगवान् इस तरह की पीड़ा में आनन्द लेते हैं वे निश्चय ही भयानक उत्पीड़क होंगे; किन्तु दूसरी ओर, जब तुम भगवान् के साथ तादात्म्य की अनुभूति प्राप्त कर चुको, तो उस विशाल और अद्‌भुत प्रेम को नहीं भूल सकते जिसे वे अपनी क्रीड़ा में उँडेलते हैं, और तब तुम यह समझ जाते हो कि हमारी दृष्टि की सीमा ही हमें ऐसा निर्णय करने के लिए प्रेरित करती है और यह कि वे एक

ऐच्छिक उत्पीड़क बिलकुल नहीं बल्कि एक ऐसे महान् और दयालु प्रेम हैं जो जगत् और मनुष्यों को उनकी प्रगतिशील यात्रा में द्रुततम मार्गों के द्वारा पूर्णता की ओर ले जाता है; यद्यपि यह पूर्णता सदा सापेक्ष होती है तथा इसे सदैव पार कर लिया जाता है।

किन्तु एक दिन ऐसा आयेगा जब प्रगति-पथ पर आगे चलने के लिए इस ऊपरी कष्ट की आवश्यकता नहीं रहेगी, जब उन्नति अधिकाधिक सामञ्जस्य और आनन्द के साथ साधित हो सकेगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ५७-५८

भागवत

कुछ लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण कभी हुए ही नहीं, वे तो एक कल्पित व्यक्ति हैं। उनके कहने का मतलब है कि वे पृथ्वी पर कभी नहीं हुए; क्योंकि वृन्दावन यदि कहीं न रहा होता तो भागवत भी न लिखी जाती।

वृन्दावन यदि पृथ्वी पर नहीं तो क्या कहीं और है?

समूची पृथ्वी अपने अन्दर की सब वस्तुओं सहित, एक प्रकार का घनरूप है, एक ऐसी चीज़ का घनरूप जिसका अस्तित्व उन जगतों में है जिन्हें हमारी स्थूल आँखें नहीं देख पातीं। प्रत्येक अभिव्यक्त वस्तु सूक्ष्मतर लोक में किसी जगह अपना एक मूल तत्त्व, एक विचार या सार-तत्त्व रखती है। यह अभिव्यक्ति की एक अनिवार्य शर्त है। और अभिव्यक्ति का महत्त्व सदैव अभिव्यक्त वस्तु के स्रोत पर निर्भर रहता है।

देवताओं के जगत् में एक ऐसे आदर्श और सामञ्जस्यपूर्ण वृन्दावन का अस्तित्व है जिसका पृथ्वी का वृन्दावन केवल एक विकृत और हास्यजनक रूप है।

जिन लोगों का आन्तरिक विकास हो चुका है, चाहे वह इन्द्रियों का हो या मन का, वे इन सत्यों को, जिन्हें एक सामान्य मनुष्य नहीं देख पाता, देखते हैं और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

अतएव, भागवत के लेखक एक हों या अनेक, निश्चय ही एक सुन्दर, अति वास्तविक और सच्चे आन्तरिक जगत् के साथ सम्बन्ध रखते थे।

इन लेखकों ने जो कुछ वर्णन या अभिव्यक्त किया है वह सभी उन्होंने इसी जगत् में देखा और अनुभव किया था।

कृष्ण मनुष्य के शरीर में मौजूद थे या नहीं, यह एक बहुत ही गौण बात है (शायद बिलकुल ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व हो सकता है), क्योंकि कृष्ण एक वास्तविक सत्ता हैं, सजीव और कार्यरत। और उनका प्रभाव पृथ्वी के विकास और रूपान्तर में एक बहुत ही महान् तथ्य रहा है।

इतिहास की चार अत्यन्त महान् घटनाएँ हैं—'ट्रॉय'[१] नगर का घेरा, ईसा का जीवन और उनका सूली पर चढ़ना, वृन्दावन में कृष्ण का निर्वासन और कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अर्जुन के साथ उनका संवाद। ट्रॉय के घेरे ने हेलास[२] को उत्पन्न किया, वृन्दावन में निर्वासन के कारण भक्ति-मार्ग का उदय हुआ (क्योंकि उससे पहले केवल ध्यान-धारणा और पूजा-अर्चना थी), ईसा ने अपने फाँसी के तख़्ते पर से यूरोप को मानव बनाया, कुरुक्षेत्र का वार्तालाप अब भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करेगा। फिर भी कहा जाता है कि इन चारों में से कोई भी घटना कभी घटी ही नहीं।

"कुरुक्षेत्र का वार्तालाप अब भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करेगा", इसका क्या अर्थ है?

... श्रीअरविन्द का विचार है कि *गीता* का सन्देश उस महान् आध्यात्मिक आन्दोलन का आधार है जिसने मानवजाति को उसकी मुक्ति का मार्ग दिखाया है तथा दिखायेगा, यानी, जो उसे उसके मिथ्यात्व और अज्ञान से निकाल कर सत्य की ओर ले जायेगा।

जब से *गीता* प्रकट हुई है तभी से उसने एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक कार्य किया है। किन्तु उसकी जो नयी व्याख्या श्रीअरविन्द ने की है उसका प्रभाव अब बहुत अधिक बढ़ गया है और उसने एक निश्चयात्मक रूप धारण कर लिया है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ६८-६९, ७१-७२

[१] यूनान के पुराणों में वर्णित प्रियम देश की राजधानी।

[२] यूनान देश को ही प्राचीन काल में 'हेलास' कहते थे।

काली भयावनी शक्ति और क्रुद्ध प्रेम के रूप में अभिव्यक्त श्रीकृष्ण ही हैं। वह अपने प्रचण्ड प्रहारों के द्वारा शरीर, मन और प्राण में स्थित स्व की हत्या करती है ताकि वह शाश्वत चिदात्मा के रूप में मुक्त हो जाये।

विश्व को समझने में समर्थ एक ज्योतिर्मय चिनगारी को स्थान देने के लिए जब हम छोटे, असमर्थ अहं को अदृश्य होते देखते हैं तो क्या हम शिकायत करें?

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ४१७-१८

भगवान् के बारे में मानसिक विचारों का भला क्या मूल्य है? इन सब विचारों का कि उन्हें कैसा होना चाहिये, उन्हें कैसे क्रिया करनी चाहिये, कैसे नहीं करनी चाहिये—ये सारी चीज़ें रास्ते की बाधा बन कर आती हैं। तुम्हारे लिए केवल भगवान् का महत्त्व है। जब तुम्हारी चेतना भगवान् का आलिंगन कर लेती है, तब तुम जान सकते हो कि भगवान् क्या हैं, उसके पहले नहीं। कृष्ण कृष्ण हैं, उन्होंने क्या किया या क्या नहीं किया, इससे हमारा कोई सरोकार नहीं; हमारे लिए जो चीज़ महत्त्व रखती है वह है—बस 'उनके' दर्शन करना, 'उनसे' मिलना, उनके 'प्रकाश', 'उपस्थिति', 'प्रेम' तथा 'आनन्द' का अनुभव करना। केवल आध्यात्मिक अभीप्सा का ही महत्त्व है—यही है आध्यात्मिक जीवन का विधान।

CWSA खण्ड २९, पृ. ५६

समस्त प्राणियों के दिव्य सुहृद् शत्रु का चेहरा पहन कर अपनी मित्रता को तब तक छिपाये रखते हैं जब तक कि वे हमें उच्चतम स्वर्गों के योग्य नहीं बना लेते; उसके बाद, जैसा कि कुरुक्षेत्र में हुआ था, युद्ध, यन्त्रणा तथा विनाश के देवता का भयंकर रूप हट जाता है और श्रीकृष्ण की मधुर मूर्ति, करुणा तथा पुनः-पुनः आलिंगित देह उनके चिर-साथी और बालसखा की विचलित आत्मा तथा शुद्ध नेत्रों के सामने चमक उठती हैं।

*

यन्त्रणा हमें आनन्द के अधीश्वर की सम्पूर्ण शक्ति धारण करने के योग्य बनाती है; यह हमें बल-वीर्य के अधीश्वर की दूसरी लीला को सहन करने की क्षमता भी प्रदान करती है। दुःख वह कुञ्जी है जो बल-सामर्थ्य का द्वार उन्मुक्त करती है; दुःख वह राजपथ है जो हमें आनन्द-नगरी तक पहुँचा देता है।

*

फिर भी, हे मानवात्मा, दुःख की खोज मत कर, क्योंकि यह भगवान् की इच्छा नहीं है, केवल उनके आनन्द की ही खोज कर; दुःख-कष्ट का जहाँ तक प्रश्न है, वह तो निश्चित रूप से उनके विधान के अनुसार उतनी बार और उतनी ही मात्रा में तेरे पास आयेगा ही, जितनी बार और जितनी मात्रा में आना तेरे लिए आवश्यक होगा। उस समय उसे सहन कर ताकि तू अन्त में उनके आनन्दोल्लास से भरे हृदय को खोज सके।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ४११

एक व्यक्ति से मेरी भेंट हुई। मैं शायद इक्कीस साल की थी, बीस या इक्कीस की। मेरी एक भारतीय से भेंट हुई जो भारत से आया था। उसने मुझे *गीता* के बारे में बताया। *गीता* का एक अनुवाद था जो काफ़ी बुरा था, उसने मुझे वही पढ़ने की सलाह दी, उसने मुझे कुञ्जी दी—उसकी कुञ्जी, यह उसकी कुञ्जी थी—उसने मुझसे कहा: "*गीता* पढ़िये, *गीता* का यह अनुवाद पढ़िये, जो बहुत अच्छा तो नहीं है, पर फ्रेंच भाषा में यही एकमात्र प्राप्य है।" उस समय मैं और किसी भाषा में समझ भी न पाती। इसके अतिरिक्त, अंग्रेज़ी अनुवाद भी उतने ही ख़राब थे, और मेरे पास कोई और... श्रीअरविन्द ने अभी अपना अनुवाद नहीं लिखा था।

उसने कहा: "*गीता* पढ़िये, और श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी भगवान् का, अन्तःस्थित भगवान् का प्रतीक मानिये।" उसने मुझसे बस, इतना ही कहा। उसने कहा: "उसे इस ज्ञान के साथ पढ़िये कि *गीता* में श्रीकृष्ण अन्तर्यामी भगवान् के प्रतीक हैं, उस भगवान् के जो आपके अन्दर विद्यमान हैं।" हाँ तो, एक ही महीने में सारा काम हो गया!

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३३९

दैनन्दिनी

नवम्बर

१. भगवान् के लिए स्नेह : एक मधुर, विश्वासपूर्ण कोमलता जो अपने-आपको अविरत रूप से भगवान् के अर्पण करती है।

२. जीवन सत्य और मिथ्यात्व के बीच, प्रकाश और अन्धकार, प्रगति और अवनति, ऊँचाइयों की ओर आरोहण या रसातल में पतन के बीच निरन्तर चुनाव है। हर एक आज़ादी से चुन सकता है।

३. पहले आती है बौद्धिक वृत्ति और अभ्यास थोड़ा-थोड़ा करके बाद में आता है। जो चीज़ बहुत महत्त्वपूर्ण है वह है, जिसे तुम सत्य समझते हो उसे जीने और वही होने के संकल्प को बहुत जाग्रत् बनाये रखना; तब रुकना असम्भव होगा और पीछे गिरना तो और भी असम्भव।

४. सभी मनुष्यों की आध्यात्मिक नियति है और वह उनके दृढ़ निश्चय के अनुसार दूर या नज़दीक होती है।
तुम्हें पूरी सच्चाई के साथ संकल्प करना चाहिये।

५. सब कुछ इस पर निर्भर होता है कि तुम अपना यन्त्रवत् उपयोग करने देने के लिए किस शक्ति को चुनते हो। और यह चुनाव तुम्हें जीवन के हर क्षण करना होता है।

६. तुम्हारे अन्दर जो चीज़ साधारण जीवन से आसक्त है और जो भागवत जीवन के लिए अभीप्सा करती है, उन दोनों के बीच संघर्ष है। यह तुम्हें देखना है कि जो चीज़ तुम्हारे अन्दर प्रबल हो उसे चुनो और उसके अनुसार कार्य करो।

७. शिखरों तक चढ़ना ही जिनकी नियति है उनके लिए ज़रा-सा ग़लत क़दम भी सांघातिक संकट हो सकता है।

८. इसे एक साहस-कार्य कहा जा सकता है क्योंकि पहली बार किसी योग ने भौतिक जीवन से निकल भागने की जगह उसे रूपान्तरित करने और दिव्य बनाने का लक्ष्य अपनाया है।

९. ... तुम जो कार्य करते हो उसकी अपेक्षा, तुम्हारे अन्दर जो चेतना है

वह बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। और अगर सत्य-चेतना द्वारा क्रियाएँ की जायें तो सबसे अधिक निरर्थक दीखने वाली क्रियाएँ भी बहुत सार्थक हो उठती हैं।

१०. सारा जीवन ही साधना है। उसे टुकड़ों में काटना और यह कहना कि यह साधना है और यह नहीं, एक भूल है। तुम्हारा खाना और सोना भी साधना का अंग होना चाहिये।

११. किसी आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए संकल्प-शक्ति द्वारा आरोपित नियन्त्रण है तपस्या।

१२. आत्म-नियन्त्रण के बिना कोई जीवन सफल नहीं हो सकता।

१३. ... तुम मनुष्य बनना तभी शुरू करते हो जब तुम उच्चतर और सत्यतर जीवन के लिए अभीप्सा करते हो और रूपान्तर के नियन्त्रण को स्वीकार करते हो। और इसके लिए तुम्हें अपनी निम्न प्रकृति और उसकी कामनाओं पर प्रभुत्व पाने से आरम्भ करना चाहिये।

१४. एकाग्रता किसी प्रभाव को लक्ष्य नहीं बनाती, वह सरल और आग्रही होती है।

१५. जब तुम ध्यान में बैठो तो तुम्हें बालक की तरह निष्कपट और सरल होना चाहिये। तुम्हारा बाह्य मन बाधा न दे। तुम किसी चीज़ की आशा न करो, किसी चीज़ के लिए आग्रह न करो। एक बार यह स्थिति आ जाये तो बाक़ी सब तुम्हारी गहराइयों में स्थित अभीप्सा पर निर्भर करता है। और अगर तुम भगवान् को बुलाओ तो उनका उत्तर भी मिलेगा।

१६. आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सुप्रसिद्ध और अजाने का कोई भी मूल्य नहीं है। गम्भीरतापूर्वक योग करने वाला एक आदमी एक हज़ार प्रसिद्ध लोगों से अधिक मूल्यवान् है।

१७. जो संसार में एकाकी अनुभव करते हैं वे भगवान् के साथ एक होने के लिए तैयार हैं।

१८. भगवान् के प्रति अपने समर्पण में सच्चे और सम्पूर्ण बनो तो तुम्हारा जीवन सामञ्जस्यपूर्ण और सुन्दर बन जायेगा।

१९. आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए अचल सच्चाई और निष्कपटता ही सबसे अधिक निश्चित मार्ग है।

स्वांग मत करो, होओ।
वचन मत दो, करो।
सपने मत देखो, चरितार्थ करो।

२०. भगवान् हमेशा उनके साथी होते हैं जो उत्साही और सच्चे हैं।

२१. जो सच्चे हैं, मैं उनकी सहायता कर सकती हूँ और उन्हें आसानी से भगवान् के प्रति मोड़ सकती हूँ। लेकिन जहाँ कपट हो वहाँ मैं बहुत कम ही कर सकती हूँ।

२२. जब तक व्यक्ति के अन्दर आन्तरिक द्वन्द्व की सम्भावना रहती है, तो इसका यह अर्थ होता है कि उसमें अब भी कुछ कपट है।

२३. अपने प्रति ईमानदार रहो—(आत्म-प्रवञ्चना नहीं)।
भगवान् के प्रति सच्चे रहो—(समर्पण में सौदेबाज़ी नहीं)।
मानवजाति के साथ सीधे रहो—(दिखावा और पाखण्ड नहीं)।

२४. अपने-आप सच्चा बनने के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि तुम औरों के सच्चा बनने का इन्तज़ार करो।

२५. अभीप्सा हमेशा अच्छी है, अगर कोई माँग उसमें मिला दी जाये तो विश्वास रखो कि वह कभी स्वीकृत न होगी।

२६. हमें हर रोज़ सभी भूलों, सभी अन्धकारों, सभी अज्ञानों पर विजय पाने की अभीप्सा करनी चाहिये।

२७. सत्ता में सब कुछ मौन है, लेकिन नीरवता के वक्ष में वह दीपक जलता है जिसे कभी बुझाया नहीं जा सकता—वह उस तीव्र अभीप्सा की अग्नि है जो भगवान् को जानना और उन्हें सम्पूर्ण रूप से जीना चाहती है।

२८. अभीप्सा की लौ इतनी सीधी और इतनी तीव्र होनी चाहिये कि कोई भी बाधा उसे विलीन न कर सके।

२९. श्रद्धा एक निश्चिति है जिसके लिए ज़रूरी नहीं है कि वह अनुभव और ज्ञान पर आधारित हो।

३०. हर क्षण, सारा अप्रत्याशित, अनपेक्षित, अज्ञात हमारे सामने रहता है—और हमारे साथ जो कुछ होता है वह अधिकतर हमारी श्रद्धा की पवित्रता और तीव्रता पर निर्भर करता है।

एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार

(एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थीं और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहाँ के शारीरिक शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयीं। उन्होंने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।)

जिन भगवान् को हम खोजते हैं वे कहीं दूर और पहुँच के बाहर नहीं हैं। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और वे हमसे बस यही चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें और अपने-आपको रूपान्तरित करके उन्हें जानने-योग्य बनें, उनके साथ तदात्म होकर अन्ततः सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करें।

हमें अपने-आपको इसके लिए अर्पित कर देना चाहिये; हमारे जीवन का यही सच्चा कारण है।

और इस उच्चतम उपलब्धि की ओर हमारा पहला चरण है अतिमानसिक चेतना की अभिव्यक्ति।

२० मार्च १९७२

नवीन सृष्टि की ओर यह क़दम उठाने के लिए हमें मन को नीरव करना और 'परम चैतन्य' में ऊपर उठना होगा।

२ अप्रैल १९७२

चेतना नीरवता में बढ़ती है।

वह 'तुझे' अधिकाधिक पूर्णता के साथ जानने की अभीप्सा करती है।

३ अप्रैल १९७२

नीरवता में सबसे बड़ी अभीप्सा होती है।

हम प्रार्थना करते हैं कि उसमें अधिक-से-अधिक ग्रहणशीलता भी हो।

४ अप्रैल १९७२

धन्यवाद प्रभो, आप हर सच्ची अभीप्सा का चमत्कारिक रूप से उत्तर देते हैं।

५ अप्रैल १९७२

नीरवता में बड़ी-से-बड़ी भक्ति होती है।

६ अप्रैल १९७२

जब चेतना पूरी तरह 'तेरी उपस्थिति' की ओर जाग जाती है तो एक क्षण ऐसा आता है कि नीरवता में ही सबसे अधिक शक्तिशाली क्रिया होती है।

७ अप्रैल १९७२

हमेशा और हर स्थिति में वही चाहना जो 'तुम' चाहते हो, यही परम पावन शान्ति का रस लेने का एकमात्र तरीक़ा है।

८ अप्रैल १९७२

हम कभी अकेले नहीं होते : 'भगवान्' हमेशा हमारे साथ होते हैं। यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम 'उनकी उपस्थिति' के बारे में सचेतन हों।

आशीर्वाद।

१ जनवरी १९७३

मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ और भगवान् को पाने के लिए तुम्हारी यात्रा में हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगी—चिरन्तन सुख पाने का यही एकमात्र तरीक़ा है।

मैं तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें देखने की आशा करती हूँ। इस कृपा के लिए प्रार्थना करो जो तुम्हारे जीवन का सच्चा लक्ष्य है।

मैं तुमसे बस यही चाहती हूँ कि श्रद्धा और विश्वास रखो।

मैं अपने-आपको तुम्हारे हृदय में रख रही हूँ ताकि तुम मुझे हमेशा वहाँ पा सको।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

अदिनांकित।

(समाप्त) **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १७, पृ. ४८४-८६

सच्चाई निश्चित रूप से 'भागवत कृपा' लाती है। श्रीमाँ

निष्काम भाव पैदा करो

मैं तुम्हें अपने जीवन की एक बात बतलाता हूँ। यह साधना के प्रारम्भिक दिनों की बात है, मैं अभी आश्रम में प्रविष्ट नहीं हुआ था। भगवान् ने मुझे सब कुछ दिया था। मेरा सुखी जीवन था। लेकिन जब मैंने योगाभ्यास शुरू किया तो मेरी मनोवृत्ति बदल गयी, मैंने अपने-आपसे कहा, "चलो भगवान् की इच्छा पूरी हो। मैं किसी चीज़ में अपनी इच्छा नहीं रखना चाहता। और फिर जब मैं अपनी इच्छा रखता हूँ तो चीज़ें ग़लत हो उठती हैं।" तो एक दिन मैंने माताजी से कहा, "माताजी, चीज़ें भले ग़लत हुआ करें पर मैंने यह वृत्ति अपनायी है कि मैं किसी चीज़ में अपनी इच्छा न लगाऊँ बल्कि भगवान् की इच्छा को हर बात में सफल होने दूँ।" माताजी ने कहा, "नहीं, यह वृत्ति भी ठीक नहीं है। तुम्हारी इच्छा भी भगवान् की इच्छा का एक अंग है। तुम्हें निश्चित रूप से उसका सर्वोत्तम के लिए उपयोग करना चाहिये और वह भी हर समय।" अतः उदासीन वृत्ति बहुत अच्छी नहीं है। तुम्हें निश्चित रूप से अपनी इच्छा को भगवान् की इच्छा के समस्वर बनाना चाहिये। लेकिन प्रश्न यह है कि भगवान् की इच्छा को कैसे जाना जाये?

जब तक तुम्हारे अन्दर कामनाएँ और पसन्द-नापसन्द हैं तब तक तुम भगवान् की इच्छा को नहीं जान सकते। लेकिन एक बार तुम कामनाओं और पसन्द-नापसन्दों को झाड़ फेंको तो भागवत इच्छा तुम्हें बतलायेगी कि क्या करना चाहिये और कैसे करना चाहिये। वह यह भी बतला सकती है कि कौन-सी घटनाएँ घटने वाली हैं और तुम उन्हें कैसे बदल सकते हो या ईसामसीह की तरह उन्हें कैसे स्वीकार कर सकते हो। ईसामसीह जानते थे कि उन्हें सूली पर चढ़ना होगा। उन्हें पता था कि यह भगवान् की इच्छा है और इसे पूरा करना होगा। जब तुम इस तरह के निष्काम भाव को विकसित कर लोगे तो तुम्हारे अन्दर ऐसा बोध पैदा हो जायेगा।

भले तुम्हारी कामनाओं का पूरी तरह से उन्मूलन न हो, तुम्हारे लिए यह तो सम्भव होना ही चाहिये कि तुम आधे या एक घण्टे के लिए उस चेतना

में ध्यानस्थ रह सको, तब तुमको भूत, भविष्य, वर्तमान की झाँकी मिल सकती है। तुम भविष्य को तभी भली-भाँति देख सकते हो जब कामनाएँ पूरी तरह दूर हो जायें। और जब तुम पूरी तरह निष्काम हो और भगवान् को समर्पित हो तो वे परिवर्तन का तरीक़ा भी बता देंगे और उपयोग के लिए मन्त्र भी। वे परम गुरु हैं और बता सकते हैं कि घटनाएँ बदलने के लिए कौन-सी शक्तियों पर केन्द्रित होना चाहिये। अगर तुम्हारे लिए ज़रूरी हो तो वे तुम्हें बतला देंगे कि तुम्हारी नियति में क्या लिखा है और उसे हँसी-ख़ुशी कैसे स्वीकार किया जाये और उससे क्या शुभ परिणाम आयेगा। इस तरह तुम ख़ुश रहोगे और तुमको दोनों तरह से लाभ होगा। अगर तुम भगवान् के साथ—भले कुछ समय के लिए ही—युक्त हो जाओ तो वे तुमको औरों के जीवन को बदलने का भी तरीक़ा बतलायेंगे। क्योंकि भगवान् पार्थिव स्तर पर मनुष्यों के द्वारा ही काम करते हैं। तुमको यह बात कभी न भूलनी चाहिये। तुमको आज यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा और पूर्ण से पूर्ण यन्त्र बनना चाहिये और कल इससे बढ़ कर। जीवन का यही तो प्रयोजन है : हर रोज़ अधिक-से-अधिक प्रगति होती चली जाये, तुम्हारा करणत्व—तुम्हारा मानसिक, प्राणिक और भौतिक व्यक्तित्व—प्रतिदिन अधिकाधिक अच्छा बनता जाये ताकि तुम भगवान् के पूर्ण यन्त्र बन सको।
(क्रमशः)

—नवजातजी

सच्चाई या निष्कपटता का अर्थ मात्र ईमानदारी से कुछ अधिक है। इसका अर्थ है कि तुम जो कहते हो वही तुम चाहते हो, वही महसूस करते हो जो तुम दावा करते हो, अपने संकल्प में गम्भीर हो। जब साधक भगवान् का यन्त्र बनना तथा भगवान् के साथ एक होना चाहता है तब उसके अन्दर की सच्चाई का अर्थ यह है कि वह सचमुच अपनी अभीप्सा में गम्भीर है तथा भगवान् के संकल्प के सिवा अन्य संकल्प या आवेग को इन्कार करता है ।

श्रीअरविन्द

दक्षिण की मीरा

श्रीविल्लीपुत्तूर दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ विष्णु भगवान् का एक पुराना और बहुत मशहूर मन्दिर है। श्रीविल्लीपुत्तूर एक भक्त कवयित्री आण्डाल की जन्मभूमि भी है। विष्णुमन्दिर में आण्डाल की मूर्ति प्रतिष्ठित है। उत्तर भारत में जिस प्रकार मीरा के पदों का प्रचार है उसी प्रकार दक्षिण भारत में आण्डाल के पद घर-घर गाये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि आण्डाल साक्षात् भूदेवी का अवतार थीं।

श्रीविल्लीपुत्तूर के चारों तरफ़ जंगल फैला था। यहाँ के प्राचीन वासियों में मल्लिक एक नामी महिला थीं। उनका पुत्र भी उन्हीं की भाँति बड़ा प्रभावशाली निकला। उसने जंगल साफ़ करना शुरू किया और अचानक वहाँ उसे विष्णु का एक पुराना मन्दिर मिला। तबसे यह स्थान विल्लीपुत्तूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तेरह सौ साल पहले यहाँ आणवार भक्त रहते थे। इनकी संख्या कुल बारह थी। इनमें सबसे अनुभवी पेरियालवार थे। सब इनको बहुत मानते थे।

पेरियालवार बड़े ही ज्ञानी और अच्छे स्वभाव के थे। उन्होंने अपनी कुटिया के सामने छोटी-सी फुलवाड़ी लगा रखी थी। उनके ज़रा से बग़ीचे में नाना प्रकार के फूल खिलते थे। वे रोज़ सवेरे फूल तोड़ते समय अपनी फुलवाड़ी में टहला करते थे। जब वे फूलों की तरफ़ देखते तो उन्हें ऐसा प्रतीत होता मानों भगवान् उनकी ओर देख कर मुस्कुरा रहे हों।

फूलों की महक में खोये से वे गाना गा रहे थे। काफ़ी समय तक उन्होंने अपने बग़ीचे का रसपान किया। उन्होंने अपने इस स्वर्ग में अचानक एक तुलसी के पौधे के नीचे किसी चीज़ को हिलते-डुलते देखा। पास गये तो वहाँ एक सुन्दर छोटी-सी बच्ची पड़ी थी। उसे देखते ही वे हर्ष से पुलकित हो उठे। उन्होंने प्रेम-विभोर हो उसे तुरन्त गोद में उठा लिया। वे दौड़ते हुए मन्दिर में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने बच्ची को विष्णु की मूर्ति के सामने रखते हुए कहा—"आपकी दी हुई बच्ची आपके चरणों में अर्पण करता हूँ। आप ही इसके मालिक हैं।"

कहते हैं कि पेरियालवार को आकाशवाणी सुनायी दी—"इसका नाम गोदा रखना और अपनी बेटी की तरह इसका पालन-पोषण करना।"

गोदा का अर्थ है—"फूलों की माला-सी सुन्दर।" वास्तव में गोदा वैसी ही सुन्दर थी। पेरियालवार बड़ी ममता से उसका पालन-पोषण करने लगे। माँ की ममता, पिता का दुलार और गुरु का ज्ञान पेरियालवार ने उसे दिया।

भक्त की पुत्री होने के कारण गोदा का मन दिन-रात मन्दिर के कामों में लगा रहता। वह अपने पिता के साथ सवेरे फूल चुनती, उनकी माला बनाती और आरती तथा पूजा की सामग्री जुटाने में अपने पिता की मदद किया करती। गोदा अपने पिता के साथ मन्दिर में गाया भी करती। इन सबका परिणाम अन्त में यह हुआ कि गोदा ने मान लिया कि उसका जीवन भगवान् के लिए ही है। वह दिन-रात केवल यह सोचा करती कि कौन से फूलों की माला उसके भगवान् को सबसे ज़्यादा भायेगी।

एक दिन सवेरे जब पेरियालवार मन्दिर में पूजा के लिए गये तो पुजारियों ने उनसे कहा—"आपकी माला पूजा के योग्य नहीं है, क्योंकि किसी ने उसे पहन कर अपवित्र कर दिया है।" पेरियालवार को उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ। ख़ैर, उन्होंने दूसरी माला बनवा कर भेजी। अगले दिन फिर उन्हें किसी ने पहनी हुई माला दिखायी और उसके साथ एक बाल भी दिखाया। पेरियालवार बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने सोचा, फूल तोड़ना और माला गूँथना तो गोदा का ही काम है। लेकिन वह कभी माला नहीं पहन सकती।

अगले दिन उनकी आँख जल्दी खुल गयी और स्नान आदि करके तैयार हो गये। मन्दिर में जाने से पहले गोदा की कुटिया के पास जाकर उन्होंने पूछा—"बेटी गोदा, क्या माला तैयार हो गयी?" गोदा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने अन्दर झाँक कर देखा तो देखते ही स्तब्ध हो गये। गोदा अपने गले में माला पहने, शीशे के सामने खड़ी, कुछ बुदबुदा रही थी। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उन्हें बड़ा ग़ुस्सा आया और अन्दर जाकर गोदा से कहा—"अरी नासमझ, तू यह क्या कर रही है?" गोदा का ध्यान भंग हुआ तो उसने अपने पिता की तरफ़ देखते हुए कहा—"देखिये, पिताजी, आज मैंने कितनी सुन्दर माला बनायी है। भगवान् इसे पहन कर कितने ख़ुश होंगे!"

"तूने मेरी इतने साल की पूजा-अर्चना और भक्ति को नष्ट कर दिया। मैं मन्दिर में भगवान् के सामने क्या मुँह लेकर जाऊँगा? तूने इस माला

को पहन कर अपवित्र कर दिया।"

गोदा इतनी भोली थी कि बिना डरे वह बड़े ज़ोर से खिलखिला कर हँसी और कहा—"पिताजी, आप इतने नाराज़ क्यों होते हैं, मैं तो रोज़ माला गूँथ कर अपने-आप पहन कर देखती हूँ। अगर मुझे अच्छी लगती है तो मैं पूजा के लिए भेज देती हूँ। आख़िर जब मुझे ही पसन्द न आये तो उन्हें कैसे पसन्द आयेगी?"

पेरियालवार का ग़ुस्सा और बढ़ गया, उन्होंने कहा—"तुझसे ज़बान लड़ाना बिलकुल फ़िज़ूल है। लेकिन तूने ऐसा किया कैसे? नहीं, मेरी ही ग़लती है जो मैंने तुझे माला गूँथने को दी। भगवान् की माला मुझे अपने आप गूँथनी चाहिये थी। भगवान् मेरे इतने दिनों के पाप को कभी भी क्षमा नहीं करेंगे।" पेरियालवार ने अपने-आप एक दूसरी माला तैयार करके भेजी।

गोदा को अपने पिता का रंग-ढंग देख कर ऐसा महसूस हुआ कि आज कोई अनहोनी बात हुई है। उसे सबसे बुरा तब लगा जब उसके पिता ने अपने-आप माला गूँथी और उसे बिना बुलाये ही मन्दिर में चले गये। उसने अपने मन में कहा—"मैंने भगवान् की माला पहन कर कैसे अपवित्र कर दी?"

पेरियालवार ने सारे दिन कुछ नहीं खाया। वे अपने शोक में डूबे हुए चिन्ता कर रहे थे कि यह क्या हो गया। उनके चेहरे पर क्लेश की छाया थी। सवेरे की घटना, चिन्ता और दुःख ने उन्हें मूक बना दिया। वे भूखे ही सो गये। रात को उन्होंने एक स्वप्न देखा—विष्णु भगवान् स्वयं उनके पास आये और कहा—"भक्तराज, तुम इतने दुःखी क्यों होते हो? तुम्हारा तो इसमें कोई कसूर नहीं है। गोदा की पहनी हुई माला ही मुझे पसन्द है। मैं उसी की माला का लालची हूँ।" विष्णु की वाणी सुन कर पेरियालवार उनके चरणों को पकड़ने के लिए झुके, तभी उनकी नींद टूट गयी। वे तुरन्त उठे और गोदा के पास चले। उन्होंने देखा कि वह कुटिया के एक कोने में चटाई पर पड़ी है। टिमटिमाते दीये के प्रकाश में उन्होंने गोदा का चेहरा देखा। वह भी बेचारी बहुत दुःखी थी। उसने भी सारे दिन कुछ नहीं खाया था। पेरियालवार ने गोदा को जगाया और कहा—"बेटी गोदा, तू धन्य है। तेरे कारण आज मैं भी धन्य हो गया। रात को भगवान् ने स्वयं मुझे दर्शन दिये। तूने अपने प्रेम से उन्हें लूट लिया। आज से मैं तेरा नाम 'आण्डाल'

रखूँगा। क्योंकि 'आण्डाल' का अर्थ है—जो भगवान् को प्रेम से जीत ले।"

संयोग की बात कि उसी रात भगवान् ने मन्दिर के पुजारी को भी यही आदेश दिया कि कल से गोदा की पहनी हुई माला ही मुझे पहनायी जाये।

*

गोदा अब सयानी हो गयी थी, वह केवल यही सोचा करती कि मेरा विवाह श्रीकृष्ण के साथ हो। वह रहती तो विल्लीपुत्तूर में थी लेकिन उसका मन था गोकुल और वृन्दावन में। उसने एक बार स्वप्न भी देखा कि श्रीकृष्ण के साथ उसके विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। यह बात उसने अपनी सखियों से कही। वह ऐसी बातें सोचती और गाने में मग्न हो जाती। उसके अन्दर से अपने-आप ही पद बहा करते थे।

पेरियालवार को गोदा के विवाह की चिन्ता हुई। उन्हें भगवान् ने फिर स्वप्न में आदेश दिया, "भक्तराज! गोदा अब विवाह के योग्य हो गयी है। उसे तुम श्रीरंगम् के मन्दिर में ले जाओ। वहाँ मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा।" भक्तराज भगवान् के आदेश को टालने वाले नहीं थे। उन्होंने तुरन्त जाने की तैयरियाँ शुरू कर दीं।

मदुरै में पाण्ड्य राजा राज्य करते थे। भगवान् ने उन्हें भी स्वप्न में यही आदेश दिया कि तुम श्रीरंगम् के मन्दिर में गोदा को ले जाओ।

श्रीरंगम् के पुजारियों को भी ऐसा ही स्वप्न आया। फिर क्या पूछना था! वे सब विल्लीपुत्तूर आ गये।

बड़ी धूमधाम से विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। सारा नगर श्रीरंगम् के मन्दिर जा रहा था। बारात श्रीरंगम् के मन्दिर की ओर जा रही थी। पालकियों में औरतें गोदा के साथ बैठी थीं। पेरियालवार हाथी पर बैठे थे। मीलों की यात्रा के बाद यह जुलूस श्रीरंगम् पहुँचा और भगवान् रंगनाथ के मन्दिर के सामने जा रुका। सब गोदा का जय-जयकार कर रहे थे।

आण्डाल डोली से उतरी। वह जब मन्दिर के गर्भ-गृह में घुसी तो रंगनाथ की मूर्ति के निकट गयी और भगवान् के पास बैठ गयी। लेकिन सबके देखते-ही-देखते वह अदृश्य हो गयी और मूर्ति में समा गयी।

पेरियालवार बड़े दुःखी हुए। आख़िर उन्होंने आण्डाल को अपनी बेटी की तरह पाला था। लेकिन उन्होंने अपने-आपको यह कह कर सन्तुष्ट किया कि यह सब भगवान् की लीला है। उन्हें उसी समय आकाशवाणी सुनायी

दी—"भक्तराज, तुम इतने दुःखी क्यों होते हो? मेरी प्रिय आण्डाल मुझमें आ मिली है। तुम उसे नहीं पहचान सके। वह तो स्वयं भूदेवी थी। तुम्हें तो इस बात पर प्रसन्नता होनी चाहिये। अब तुम भी जल्दी मुझमें आ मिलोगे।"

*

मीराबाई भी इसी तरह मूर्ति में समा गयी थीं। इसीलिए आण्डाल को दक्षिण की मीरा कहते हैं। आण्डाल के पद आज भी घर-घर में गाये जाते हैं और उसकी पूजा की जाती है। इसीलिए दक्षिण में विष्णु भगवान् की मूर्ति के बायें आण्डाल की भी मूर्ति देखी जाती है।

अपने एक गीत में आण्डाल कहती हैं : (यह उस गीत का अंश है)

तुम मेरे कृष्णप्रेम को नहीं समझ सकते। तुम्हारी चेतावनियाँ बेकार हैं। चलो-चलो, मुझे मथुरा ले जाओ, जहाँ युद्ध के बिना ही उसने विजय प्राप्त की थी। लाज बेकार है! सब पड़ोसी जान गये हैं। क्या तुम सचमुच मेरी बीमारी दूर करना चाहते हो? तो मुझे उसके दर्शन करा दो, उस मायावी के पास पहुँचा दो जिसने तीनों लोकों को नाप लिया था। बात फैल गयी है कि मैं माँ-बाप, नातेदार-रिश्तेदारों को छोड़ कर भाग गयी हूँ। मैं उसके साथ चली गयी हूँ। चलो, मुझे आधी रात को उस गोपाल के यहाँ पहुँचा आओ।

दुःख मत करो, तुम लोग मेरी बीमारी को नहीं जान सकते। मुझे तो बस वह श्यामवर्ण बालक ही—जिसे कृष्ण कहते हैं—ठीक कर सकता है।

ये पँक्तियाँ हमें 'अब तो बात फैल गयी जानत सब कोई', 'मेरो दरद न जाणे कोइ', 'मेरो बैद समलिया प्यारो' और 'आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हें' की याद दिलाती हैं।

'पुरोधा', जनवरी ६४ से —श्री सुबोध

कृष्ण अन्तरस्थ भगवान् हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वे सर्वोच्च प्रभु के आनन्द और प्रेम का सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कुराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे साथ-ही-साथ खिलाड़ी, खेल और खेल के सभी साथी—तीनों हैं।

श्रीअरविन्द

एक बार रिक्त हो जाऊँ!

वर्षों से यह ख़्वाहिश
जगी है मन में
मैं भी बन जाऊँ
एक नन्हीं-सी बाँसुरी
जो विराजे तुम्हारे होठों पर,
कोमल करों के स्पर्श से
फूट पड़ें सप्त स्वर।

लेकिन अफ़सोस!
मुझमें 'बाँस की बाँसुरी' जितनी
योग्यता भी नहीं।

बाँसुरी तो भीतर से पोली होती है
जिसके भीतर फूँक मारते ही
विविध रागिनी प्रकट होती है।

मैं तो इतनी सघन हूँ
'मैं-पन' से ठसाठस भरी हुई
जिसमें एक क़तरा साँस भी नहीं समाता
फिर कैसे बजूँगी बाँसुरी-सी?

तुम्हारे स्वर में बजने के लिए
मुझे ख़ुद को ख़ाली करना होगा।

एक बार रिक्त हो गयी
तो फिर मुझसे तुम
मनचाहे स्वर निकाल सकोगे
और अपनी मधु तानों से
भर सकोगे दिग्दिगन्त!

—कंचन 'मैत्री' से साभार

बस आवरण हटाने की ज़रूरत है

हाँ, तो आज मैं तुम्हें कहानी सुनाऊँगा, शायद कहानियाँ सुनाऊँ। इनमें से कई कहानियाँ मैं भिन्न-भिन्न अवसरों पर तुमसे अधिक उम्रवाले लोगों को सुना चुका हूँ, उन लोगों को जिनकी ग़िनती अब वयस्कों में की जाने लगी है। तो कहानी यूँ है :

किसी समय एक किशोरी, काफ़ी छोटी उम्र की, बहुत अच्छी और बेहद ख़ूबसूरत, अपने माता-पिता के साथ रहा करती थी। ख़ासकर वह अपने दादाजी के संग बहुत हिली-मिली थी। उसके दादाजी काफ़ी बूढ़े थे लेकिन थे उसी बच्ची के समान भले, उदार और सज्जन। उन्हें बच्ची से गहरा स्नेह था, सचमुच उन्हें अपनी पोती पर गर्व था और बालिका के हृदय में भी अपने दादाजी के प्रति इसी तरह के भाव उठा करते थे।

एक दिन की बात है, बच्ची के दादा बीमार पड़ गये, सख़्त बीमार। बात स्वाभाविक-सी लगती है, वे बहुत बूढ़े जो थे। पास-पड़ोस के लोग और सगे-सम्बन्धी, सभी मरीज़ के कमरे में जमा हो गये। "हालत कैसी है?" सबके मन में यही प्रश्न था। चिकित्सकों ने भी अपनी तरफ़ से कोई कोर-कसर न छोड़ी। वह छोटी बच्ची अपने दादा के बिस्तर से कुछ हट कर खड़ी थी। बहुत ही उदास, सचमुच बेहद उदास थी वह। उसकी पलकें झुकी हुई थीं। अचानक दादा को देखने के लिए उसने नज़रें उठायीं तो क्या देखती है—अद्‌भुत, अद्‌भुत ही कहना चाहिये—उसके सामने दादा के बिस्तर के पास ही एक दूसरी छोटी लड़की खड़ी थी। देखने में और हर तरह से बिलकुल उसी जैसी!!—मानों उसकी जुड़वा हो। वह बच्ची स्वयं अपने दादा के बिस्तर के एक छोर पर कुछ हट कर खड़ी थी, दूसरी लड़की ठीक उसी की तरह दूसरे छोर पर बिस्तर के काफ़ी पास खड़ी थी। बच्ची बड़े ही चक्कर में पड़ गयी और उसने स्वयं से पूछा—"कैसी अजीब बात है! यह क्या हो रहा है? मैं यहाँ खड़ी हूँ और मेरी ही आकृति, मेरा प्रतिरूप उस ओर है।" वह अपने दादा के बिस्तर के कुछ पास गयी तो वह आकृति भी बिस्तर के और पास चली आयी। लेकिन किसी और ने यह न देखा। वह अकेली इसे जानती थी, दूसरों के लिए वह अकेली ही थी। बच्ची ने पूछा—"तुम कौन हो?" उसने जवाब दिया—"मैं तुम्हें यह

बाद में बताऊँगी।" और इतना कह उसकी वह आकृति विलीन हो गयी। इसके बाद वृद्ध सज्जन स्वस्थ हो गये और बच्ची ने अपने दादा को पहले की तरह फिर से पा लिया। लेकिन वह बालिका अपने इस अद्‌भुत अनुभव के बारे में बहुत सोचती-विचारती, स्वयं से प्रश्न करती—"आख़िर कौन थी वह?" काफ़ी समय तक उसे इसका कोई जवाब न मिला। लेकिन वह भली-भाँति अनुभव कर रही थी कि उस आकृति की उपस्थिति के कारण ही उसे अपने दादा वापस मिले। वास्तव में, इसमें कोई सन्देह नहीं। उसने जो कुछ देखा, पूरी तरह सच था।

इस घटना के बाद कई ऐसे अवसर आये जब बालिका के दूसरे रूप ने उसे संकटों और कठिनाइयों से उबारा। बाद में, समय के साथ-साथ, बच्ची ने यह जाना कि वह आकृति, जो हू-ब-हू उसी की तरह है, और कोई नहीं, वह स्वयं ही है—उसकी सच्ची आन्तरिक सत्ता।

*

इस सन्दर्भ में तुममें से कइयों को प्रसिद्ध फ़्रेंच कवि "आल्फ़्रे द्यू मूसे" की प्रसिद्ध कविता "नुई द देसाम्ब्र" (दिसम्बर की एक रात) का स्मरण हो आया होगा जहाँ वे किसी अजनबी साथी की बात करते हैं जो संकट के क्षण उनके पास आकर उनके सिरहाने बैठा करता था—एक अजनबी जो हमेशा काला लिबास पहने रहता था और बिलकुल उनके जुड़वा भाई की तरह लगता था।

व्यक्ति के दो पहलुओं की यह कहानी बहुत विरल नहीं है जिसमें एक पहलू पथप्रदर्शक, परामर्शदाता, मित्र और सहायक होता है। यह मित्र, यह सखा तुममें से हर एक के साथ रहता है। वह तुम्हारी रक्षा करता है, तुमसे सचमुच प्रेम करता है। अगर तुम चाहो तो उस सखा को देख सकते हो। कम-से-कम उसका अनुभव तो कर सकते हो, यह नाक-नक़्श में ठीक तुम्हारी तरह होता है, तुम्हारा अपना रूप, मानों तुम स्वयं को शीशे में देख रहे हो—इतना वास्तविक, इतना जीवन्त! वह तुमसे बातें करता है, तुम्हें सलाह देता है; सचमुच कितना स्नेही और श्रद्धेय होता है वह! इस सखा का अनुभव करने, इसे देखने, इसके सम्पर्क में आने का एक तरीक़ा यह है कि हमेशा अच्छे रहो, अच्छी चीज़ें करो, बुरे विचारों को कभी आने न दो, अपना मन हमेशा स्वच्छ रखो और व्यवहार में हमेशा शिष्ट रहो। यह

चीज़ तुम्हारे मित्र को चुम्बक की भाँति आकर्षित करेगी और तुम उसे अपने अन्दर, अपने निकट अनुभव करोगे। तुम्हारा छिपा हुआ साथी प्रकट हो जायेगा। यह प्रच्छन्न सखा और कोई नहीं, तुम्हारे अन्दर माताजी की उपस्थिति है, माताजी हमेशा तुम्हारे साथ हैं, तुममें से हर एक के साथ हैं।

शायद मैं कह सकता हूँ कि तुममें से हर एक अपने साथ तीन व्यक्तियों को लिये रहता है। तुम्हारे तीन व्यक्तित्व हैं: सबसे पहला—बाहरी रूप जो दूसरों के सम्मुख होता है, कपड़ों में सुसज्जित। लेकिन उस सज्जा के पीछे तुम्हारा विवस्त्र और नग्न शरीर होता है, यह तुम्हारा स्वाभाविक रूप है। पहले व्यक्तित्व से, जो कपड़ों से ढका था, यह काफ़ी भिन्न होता है। लेकिन इस स्वाभाविक शरीर के पीछे, इससे एकदम भिन्न और कोई चीज़ होती है। शरीर तुम्हारी समस्त वर्तमान प्रकृति का प्रतिनिधि है। तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारा प्राण, सब कुछ तुम्हारे साधारण, स्वाभाविक व्यक्तित्व की इकाई हैं, लेकिन यह सब भी बाहरी वस्त्र हैं जो किसी दूसरे व्यक्ति पर चढ़े हैं। इस सबके पीछे और अन्दर एक अलग व्यक्ति है जिस पर तुम्हारा शरीर वस्त्र के रूप में चढ़ा है। एकदम अन्दर की वह सत्ता ही तुम्हारी सच्ची सत्ता है जिसके बारे में मैं कह रहा था। वही तुम्हारा परम सखा और भाई है। सचमुच तुम्हारा सच्चा स्वरूप है। माताजी की उपस्थिति और उनके प्रेम का मूर्त रूप है।

माताजी की इस उपस्थिति और उनके इस प्रेम को प्रकाश में लाने के लिए तह को खोलने या आवरण हटाने-भर की ज़रूरत है।

—नलिनीकान्त गुप्त

कृष्ण का आनन्द

(पुष्प का श्रीमाँ द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ)

कुसुम्बी सारी

(कवि सुन्दरम् अपने समय के श्रेष्ठ कवि, कथाकार रह चुके हैं। 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' तथा 'पद्म भूषण' से विभूषित श्री सुन्दरम् आश्रम के ही अन्तेवासी थे। यहाँ उनकी एक हृदयस्पर्शी कहानी दी जा रही है—सं.)

"माधुरी! माधुरी!"

मानों किसी मीठी आवाज़ ने उसे बुलाया। वह चौंक पड़ी। वैसी मीठी आवाज़ उसने पहले कभी नहीं सुनी थी। उस आवाज़ का जवाब देने के लिए उसके मन में एक बड़े ज़ोर की उमंग उठ आयी।

"हाँ, यहाँ हूँ।"—वह बोल ही उठी।

उसी उमंग के वश वह बिछौने पर आधी उठ गयी। उसकी आँखें खुल गयीं और आँखें खुलते ही वह निराश हो गयी। मानों कोई मीठा स्वप्न टूट गया हो। वह स्वतः बोल उठी—"कैसी भनक सुनायी पड़ती है!"

सफ़ेद चूने से पुती हुई उसकी कोठरी साक्षात् शुष्कता-जैसी थी। कपड़े टाँगने की काली-काली खूँटियाँ एक कोने में भीत के ऊपर चिपकी हुई बड़ी-बड़ी अँठइयों की तरह दिखायी देती थीं। कमरे के सभी खिड़की-दरवाज़े बिलकुल सूखे-साखे राख के रंग के थे। एक शतरंजी पर उसका बिछौना लगा हुआ था। बगल में ही सन्दूकनुमा चरखा पड़ा था। एक कोने में उसकी समस्त सम्पत्ति का संरक्षण करने वाली एक छोटी-सी पेटी पड़ी थी। खूँटी पर टँगे हुए उसके कपड़े दीवार के रंग से मिल गये थे। सारे कमरे में बस दो ही रंग थे—सफ़ेद और काला।

यही उसकी सारी दुनिया थी। किसी अनजान बेचैनी का अनुभव कर वह फिर बिछौने पर पड़ गयी। उस आवाज़ को फिर से सुनने के लिए उसका हृदय छटपटा रहा था। उसका दिमाग़ उस आवाज़ की खोज में भटकने लगा। पर कहीं भी कोई कूल-किनारा नहीं दिखायी देता था। थके-माँदे मन में उसके अगले दिन के कामों के विचार आन लगे और यन्त्रवत् आने वाले विचारों के चक्कर में चक्कर खाता हुआ उसका निराश मन न मालूम कब वैसी ही आवाज़ों से भरी हुई नींद के अन्दर लुढ़क गया।

फिर उसने वही आवाज़ सुनी—"माधुरी! माधुरी!"

उसके अन्दर मानों आनन्द का एक बवण्डर नाचने लगा। उसके मुँह से निकल पड़ा—"कौन हो तुम?" जवाब में एक हँसी सुनायी पड़ी, उस आवाज़ से भी कहीं अधिक मधुर! वह थोड़ी सहम गयी। क्या कहे क्या न कहे, कुछ समझ न सकी। फिर सर्वत्र सन्नाटा छा गया।

"मैं हूँ।" एक बड़ी ही प्रेम-भरी आवाज़ बड़ी दूर से आती हुई मालूम हुई।

"पर 'मैं' कौन?" उसने नम्रता के साथ पूछा।

फिर उसी तरह हँसी सुनायी पड़ी, बालक के मस्त कल्लोल के जैसी।

"परन्तु तू जब आँख खोले तब तो तुझे समझाऊँ?"

सचमुच में उसे आश्चर्य हुआ कि वह आँखें बन्द करके ही बातें कर रही थी। वह आँखें खोलने लगी पर उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसकी आँखें खुलती ही न हों! मानों उसकी आँखें ही न हों! पपनियाँ मानों सी गयी हों।

और जैसे कोई चमत्कार हो गया हो, इस तरह उसे चीज़ें दिखायी देने लगीं। उसने देखा कि वह एक नयी ही दुनिया में आ गयी है।

जहाँ-जहाँ नज़र गयी वहाँ-वहाँ सब कुछ हरा-भरा था। ज़मीन पर मखमल-जैसी कोमल घास थी, घने-घने पत्तेवाले पेड़ थे, झूमते हुए फूलोंवाले फूलों के पौधे थे। घास के अन्दर पतली-पतली पगडण्डियाँ थीं। इस समय वहाँ कोई न था; फिर भी ऐसा मालूम होता था कि वहाँ बहुत-से लोग आते-जाते होंगे।

इतने में उसका ध्यान वहाँ उठती हुई आवाज़ की ओर गया। एक नन्हीं सी चिड़िया टिक-टिक-टुक, टिक-टिक-टुक करती हुई एक पेड़ से उड़ कर दूसरे पेड़ पर चली गयी। कहीं पर छिपी हुई एक कोयल की कूक सुनायी पड़ी। सारा बन मानों बोल रहा हो। एकाएक सब कुछ शान्त हो गया और उस शान्ति के मानों दूसरे किनारे से एक आवाज़ आती हुई सुनायी पड़ी। पहले तो एक हलकी-सी बाँसुरी सुनायी पड़ी, उसमें नूपुर की आवाज़ आ मिली, उसमें गीत गाने की आवाज़ जुट गयी।

यह भला क्या हो सकता है? उसके मन में विचार आया और उसने इस तरह आँखें दौड़ाते हुए पीछे की ओर मुड़ कर देखा जैसे वह किसी

को खोज रही हो। उसने देखा कि कोई उसके पास खड़ा है! वह एकदम दंग हो गयी!

निरी मिठास ही मानों खड़ी हुई थी! उसकी ऐसी इच्छा हुई कि बस पूरी-की-पूरी उसी में समा जाऊँ, उसके पैरों पर लोट जाऊँ, उससे लिपट जाऊँ। परन्तु एक लम्बे अभ्यासवश उसके मन में—शरीर में जो अकड़ आ गयी थी उसने उसे रोका। फिर भी उसने कुछ बोलने का प्रयास किया।

"आप... आप कौन हैं?"

उसने देखा कि उसकी इच्छा न होने पर भी उसकी आवाज़ में एक प्रकार की शिष्ट रुखाई आ गयी है।

उस स्त्री ने अपना हाथ बढ़ा कर माधुरी का हाथ पकड़ लिया।

माधुरी की अकड़ मानों पिघल गयी। यह कोई नया ही व्यवहार था। कोई बिना बोले-चाले ही उसे जीत रहा था, गला रहा था! और यों पिघलना मानों उसे बहुत मीठा लग रहा था! उसे ऐसा लगा मानों उस आर्द्र द्रवण के अन्दर उसके मन के प्रश्न भी पिघले जा रहे हों, पूछने का कुछ भी नहीं रह जाता! बस, यही देखते जाना है कि क्या हो रहा है!

बालक की अँगुलियाँ पकड़ कर जिस तरह कोई चलता है उसी तरह माधुरी को पकड़ कर बड़ी कोमलता के साथ, प्रेम के साथ वह स्त्री लिये जा रही थी। पर यह हो कौन सकती है?

उसके कान में एक गीत की भनक पड़ी। मानों कोई गान न मालूम कब से चल रहा हो और अब बीच से ही सुनायी पड़ने लगा हो—

दास मीरा लाल गिरधर...
दास मीरा लाल गिरधर...
दास मीरा लाल गिरधर...
अगम तारन तरन

उसके हृदय में अपने-आप एक परिचय प्रकट हुआ।

यह तो मीरा है!

और उसे यह भान हुआ कि तुरत ही, मीरा को देखने के लिए, उसको ग़ौर से देखने के लिए, उसने आँखें फेरीं और वहाँ उसके पास कोई भी नहीं था!

वही मीठी शान्ति सर्वत्र व्याप रही थी, पक्षी गूँज रहे थे, बाँसुरी बज

रही थी, और शब्द बिना स्वर हवा में तैर रहे थे।

*

माधुरी ने देखा कि वह एक चट्टान पर बैठी है। पास में ही एक झरना बह रहा है। आसपास कँटीले पेड़ हैं। जहाँ-जहाँ नज़र दौड़ाओ वहाँ-वहाँ बेढब, ऊखड़-खाबड़ चट्टानें इकट्ठी हो रही हैं। झरने की धार में भी शिलाओं का ढेर लगा हुआ है। कड़ी गर्मी पड़ रही है। छाया का कहीं नामोनिशान तक नहीं है। उसे प्यास मालूम हुई। वह झरने से पानी लेने के लिए नीचे झुकी। झरने के स्थिर पानी में उसे अपना मुँह दिखायी पड़ा। ऐं! यह माधुरी है!

माधुरी! उसकी आँखों से भी क्या कभी अमृत झरा था? क्या उसे भी कभी जीवन में अमृत की एक बूँद मिली थी? वह तो एक कठोर व्रत लेकर जी रही थी। कर्तव्य करने-भर का उसे सन्तोष था। पर तृप्ति का कोई परमानन्द उसे न था।

पर यह आनन्द किसमें था? इस आनन्द की अपेक्षा भी किसी को थी? भला इस आनन्द की बात करना भी पागलपन माना जाता था। वह अपनी उलझन कहाँ किस ढंग से जनावे—यह भी उसकी समझ में नहीं आता था।

अपना काम करते-करते उसका हाथ रुक जाता। बातें करते-करते उसकी आँखें बन्द हो जातीं। उसका काम अच्छी तरह से सम्पन्न होता। सब लोग उसकी प्रशंसा करते। फिर भी उसे स्वयं तृप्ति न मिलती। वह आतुर हृदय से प्रार्थना करने बैठ जाती। पर कोई प्रत्युत्तर न मिलता!

प्रार्थना करके उठने पर वह अपने संगी-साथियों की ओर देखती। क्या किसी से कुछ भी श्रीप्रभु ने कहा है? क्या किसी की आँखों को उस नयनाभिराम की झलक मिली है? उसकी आँखें निराश होकर वापस आ जातीं। प्रार्थना कराने वाले से वह पूछना चाहती—कहो तो भला वह पतितपावन कहीं दिखायी पड़ा? मानों उसे जवाब मिलता—हम तो बहन, बस गाना ही जानते हैं।

उसे अकेली छोड़ कर सब लोग चले जाते। कोई बेकार न था, सबको कोई-न-कोई एक अपना काम था। प्रभु को खोजने का काम किसी के 'टाइम-टेबुल' में लिखा हुआ उसने नहीं देखा था। केवल वही एक बेकार थी। फिर भी उसे काम में लगने का स्वाँग करना पड़ता। कोई अगर उससे कहता कि मैं तुझे प्रभु को दिखा दूँगा तो वह तुरत सब कुछ छोड़ कर उसके पीछे-पीछे

निकल पड़ती। पर ऐसा कहने वाला उसे अभी तक कोई नहीं मिला।

मात्र उसे रोज़ उपदेश मिलता। प्रभु तो जगत् में ही हैं। जगत् की सेवा करो। दरिद्रनारायण की सेवा करो। इसके सिवा कोई दूसरी पूजा, भक्ति, सेवा, अर्चना आज के युग में नहीं है। वह दरिद्रों की झोपड़ियों में जाती। वहाँ दरिद्र तो थे, पर नारायण नहीं थे। उसके बहुत-से संगी-साथी थे। वह हर एक से पूछना चाहती—सच कहिये, क्या यहाँ आपको नारायण दिखायी पड़े हैं? एक विचित्र व्यंग्य से भरे मुखड़े उसके सामने हँसते रहते।

वह घर आकर रो पड़ती। उसकी प्रार्थना अपने-आप शुरू हो जाती। प्रभो! तू कहाँ है? इस जगत् के सिवा क्या तू और कहीं नहीं दिखायी देता? क्या केवल इस जगत् के मनुष्यों, पीड़ितों, दरिद्रों में ही तू है? दरिद्र के सिवा क्या कोई दूसरा रूप तेरा है ही नहीं? इस जगत् के कीचड़ से मुक्त क्या तेरी कोई मूर्ति नहीं है? क्या तेरी अपनी ही, हमारी कल्पनाओं और भावनाओं के जंजाल से मुक्त, कोई तेरी अनूठी प्रतिमा नहीं है? वह पूछती। वह गाते-गाते रुक जाती।

कोई जवाब न मिलता। उसका मन स्तब्ध हो जाता। मस्तिष्क की हलचल दूर हो जाती। जगत् लुप्त हो जाता। किसी का नामोनिशान तक न रह जाता। उसकी आँखें खुलतीं—रिक्त हृदय से एक निःश्वास निकल पड़ता। वह अपनी कोठरी की भीत पर हाथ ले जाती। कहीं मेरा प्रभु आकर यहीं खड़ा न हो। ठण्डी भीत से लग कर हाथ ठिठुर जाता। उसका गला सूख जाता। वह हाथ फैलाती। गले में शुष्कता बढ़ती ही जाती। पर पानी दूर-का-दूर ही रह जाता। उसके मुँह से करुण पुकार निकल पड़ती। "पानी! पानी!"

*

एक मीठे गीत ने उसे मूर्च्छा से जगा दिया।

मन रे! परस हरि के चरन!
सुभग सीतल कमल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
मन रे! परस हरि के चरन!

उसके कण्ठ में अमृत भर रहा है, उसकी आँखें भींज रही हैं, उसे कोई शीतलता छू रही है, उसे आँखें खोलने का जी नहीं करता। आँखें मींचे हुए ही वह उन शब्दों की रट लगा रही है—

सुभग सीतल कमल-कोमल,
सुभग सीतल कमल-कोमल,
त्रिविध ज्वाला हरन!
हरि के चरन!
हरि के चरन!
कहाँ हैं हरिचरन?

उसकी आँखें खुल जाती हैं। वह देखती है कि वह एक सघन कुञ्ज में है। मौर की सुगन्ध से भरा हुआ एक आम का पेड़ उसके ऊपर झुका हुआ है। कोई आकर उसे झकझोरता है।

"अली! कैसी है यह! अभी तक तैयार नहीं हुई!"

कोई उसे बाँह पकड़ कर उठाता है—ज़बरदस्ती घसीट कर ले जाता है। पास के एक कुञ्ज में स्त्री-पुरुष कल्लोल कर रहे हैं। रंग-बिरंगी सजावट हो रही है। फूलों की गन्ध हवा में भीन रही है। कोई गाता है, कोई गुनगुनाता है, कोई थोड़ा-सा नाच लेता है, कोई बाल सँवारता है, कोई आंजन लगाता है, कोई हृदय पर हार लटकाता है।

कोई आया और उसने झटपट माधुरी को सजा दिया। बालों की वेणी, वेणी में फूल, आँखों में आंजन, गले में हार, हाथों में गजरा, पैरों में नूपुर! ... माधुरी को मानों कोई अमृत के अन्दर हिलोर रहा हो।

उसे कौन-सी साड़ी दी जाये? उसके चारों ओर आवाज़ें गूँज रही थीं। कहीं से साड़ियाँ दीखने लगीं—रंग-रंग की, भाँति-भाँति की।

"यह... यह..."—एक बोल उठी।

माधुरी की सजावट पूरी होते-न-होते वहाँ के वातावरण में गम्भीरता छा गयी। कोई अदृश्य रूप से आकर खड़ा हो गया और उसकी उपस्थिति से सारा वायुमण्डल भर गया। माधुर्य का बड़ा गहरा स्पर्श उतरने लगा और गान गूँजने लगा। स्फुट-अस्फुट शब्द घुटने लगे।

गिरधारी लाला, हाँ... गिरधारी लाला
चा... कर रा... खो... जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ,
बाग लगासूँ
नित उठ दरसन पासूँ।

हाँ... नित उठ दरसन पासूँ।

मानों किसी को देख कर सब लोग गाते हों—इस तरह गीत का प्रवाह एक दूसरे ही ढंग से बहने लगा।

मोर मुकुट पीताम्बर सोहे गल बैजन्ती माला।

गानेवालों की आँखें किसी आकाशी झरोखे की ओर ऊँची हुईं—

ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ

ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ

... बिच-बिच राखूँ बारी।

साँवरिया के दरसन पाऊँ...

दरसन पाऊँ...

माधुरी का हृदय एकाएक छलक उठा। दरसन? परन्तु उसे खींचते-खींचते गीत आगे बढ़ता रहा—

पहिर कुसुम्बी सारी।

कुसुम्बी सारी।

माधुरी ने देखा कि सबकी नज़र उसकी ओर लगी हुई है। पृथ्वी की ही मानों किसी परिचित आवाज़-जैसी एक आवाज़ उसकी बगल से आकर उसके कानों में पड़ी—

"बहन को कुसुम्बी सारी बहुत शोभा दे रही है!"

*

वह जग पड़ी, उस समय काफ़ी उजियाला हो गया था। उसके पास के कमरे में रहने वाले भाई चरखा निकाल कर अपने नित्य नियम के अनुसार चबूतरे पर बैठ कर सूत कात रहे थे। माधुरी को देर से उठी देख कर उनके चेहरे पर एक कठोरता आ गयी, परन्तु उन्होंने अपनी अभ्यस्त शिष्ट भाषा में ही दबी ज़बान से कहा—

"आज तो माधुरी बहन प्रार्थना में चूक गयीं।"

माधुरी कोई जवाब दिये बिना चुपचाप चली गयी। —श्री सुन्दरम्

कृष्ण पधारे, यह अखिल जीवन बना त्योहार था!

कुछ कहना चाहती हो प्रिये?

दक्षिण के महान् कवि तिरुवल्लुवर के नाम से कौन अपरिचित है? पेशे से ये जुलाहे थे, लेकिन कवित्व इनके अन्दर कूट-कूट कर भरा था। घर-घर में इनके गीत गूँजते हैं। कवि से सम्बन्धित कई प्रसिद्ध कहानियाँ हैं जिनमें से एक यह रही जो सुनने में इतनी सरल होते हुए भी जीवन के एक गूढ़ सत्य से सराबोर है—

कहा जाता है कि कवि तिरुवल्लुवर भोजन के समय थाली के पास हमेशा साफ़ पानी से भरी एक सीपी और एक सूई रखा करते थे। सच्चे हृदय से पति को परमेश्वर के रूप में पूजने वाली उनकी धर्मपरायणा पत्नी वासुकी ने कभी इस विषय में उनसे कुछ नहीं पूछा क्योंकि वह जानती थी कि समय आने पर स्वयं उसके पति इस रहस्य का उद्घाटन अवश्य कर देंगे।

दिन महीनों में बदलने लगे और महीनों ने वर्षों का रूप ले लिया, लेकिन वासुकी की पतिसेवा में लेशमात्र भी अन्तर न आया। वह उसी सच्ची निष्ठा के साथ घर के व्यापारों में तल्लीन रहती, हमेशा की तरह पति के भोजन के समय पानी से भरी सीपी और सूई रखती और खाने के बाद ज्यों का त्यों उन्हें हटा देती। लेकिन वासुकी को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का होता कि उसके पति ने भोजन के समय और न ही उसके पहले या बाद में पानी और सूई का कभी उपयोग किया। लेकिन जो परिपाटी शुरू हुई वह चलती चली गयी।

सुखी दम्पति ने कई सुखद वर्ष एक साथ गुज़ारे और समय के साथ-साथ दोनों वार्धक्य के दरवाज़े पर आ खड़े हुए। बुढ़ापे के पीछे-पीछे प्रायः चली आती हैं बीमारियाँ भी। वासुकी को भी रोग ने धर दबोचा और उसने खाट पकड़ ली। कवि दिन-रात एक कर पत्नी की सेवा-सुश्रूषा में उसी तरह लग गये जैसे कोई माँ अपनी सन्तान की सेवा में। लेकिन लम्बी बीमारी ने वासुकी को काल के मुख में ला खड़ा किया। मृत्युशय्या पर वासुकी की आँखों में एक ही प्रश्न तैर रहा था और ओंठ बार-बार एक ही वाक्य के लिए काँप रहे थे। पत्नी के हाथों को स्नेहपूर्वक अपने हाथों में लेकर तिरुवल्लुवर ने पूछा—"कुछ कहना चाहती हो प्रिये?"

वासुकी ने सिर हिला कर हामी भरी।

"जो कुछ तुम्हारे मन को मथ रहा हो निस्संकोच कह डालो।" कवि ने पत्नी के हाथों को और कस कर पकड़ लिया।

धीरे-धीरे लेकिन स्पष्ट वाणी में वासुकी ने कहना शुरू किया— "स्वामिन्, हमेशा आपका यह आग्रह रहा कि मैं आपके भोजन के समय पानी से भरी सीपी और साथ में सूई रखा करूँ यद्यपि मैंने जीवन-भर इन चीज़ों का कोई उपयोग नहीं देखा। इसमें ज़रूर कोई गूढ़ रहस्य है जिसे मैं आज तक नहीं समझ पायी, लेकिन आज अन्तिम समय उसी रहस्य को जानने के लिए मेरा हृदय व्याकुल हो उठा।"

मधुर मुस्कान खिल उठी कवि के मुखमण्डल पर। प्रेम से पत्नी का माथा सहलाते हुए बोले—"प्रिये, यह तो तुम जानती ही हो कि भोजन पाने के लिए प्राणिमात्र को कितना परिश्रम करना पड़ता है, अपना पेट भरने के लिए जीवन-भर वह पसीना बहाता रहता है, इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम भोजन का एक कण भी नष्ट न करें। भोजन के समय पानी और सूई रखने का एकमात्र कारण यही था कि अगर खाना परोसते या खाते समय भात का एक दाना भी केले के पत्ते से बाहर गिर जाये तो सूई से उठा कर सीप के पानी में धोकर मैं भोजनरूपी अर्घ्य को आत्मसात् कर लूँ। लेकिन इतने वर्षों में तुमने एक बार भी मुझे इनका उपयोग करने का अवसर ही नहीं दिया। सच, तुम जैसी धर्मपरायणा, पतिव्रता पत्नी पाकर मैं निहाल हो उठा। तुम्हें देकर विधाता ने मुझ पर कृपा-वृष्टि कर दी, उनका वरद हस्त हमेशा मुझ पर रहा।"

वासुकी का आनन सन्तोष और कृतज्ञता के प्रकाश से जगमगा उठा। सौभाग्यवती थी वासुकी जिसने शान्ति के साथ पति की गोद में अपनी इहलीला समाप्त की। निश्चित रूप से देवता स्वयं उसे लेने आये।

कवि ने भी शान्त, स्थिर चित्त से पत्नी का विमान उठते देखा क्योंकि वे जानते थे कि जिस तरह व्यक्ति पुराने कपड़े उतार कर नये धारण करता है उसी भाँति आत्मा पुराने शरीरों को त्याग कर नूतन शरीरों में प्रवेश करती है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

'अग्निशिखा', मार्च २०१० से —वन्दना

कृष्ण अन्तरस्थ भगवान् हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। वे सर्वोच्च प्रभु के आनन्द और प्रेम का सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कुराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे साथ-ही-साथ खिलाड़ी, खेल और खेल के सभी साथी—तीनों हैं।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA
INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION
An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO
INTERNATIONAL SCHOOL
(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st November 2023
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, नवम्बर २०२३, वर्ष १, अंक ४, पूर्णांक ४
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

SRI AUROBINDO
A New Dawn
A HAND-PAINTED ANIMATION FILM BY SRI AUROBINDO SOCIETY

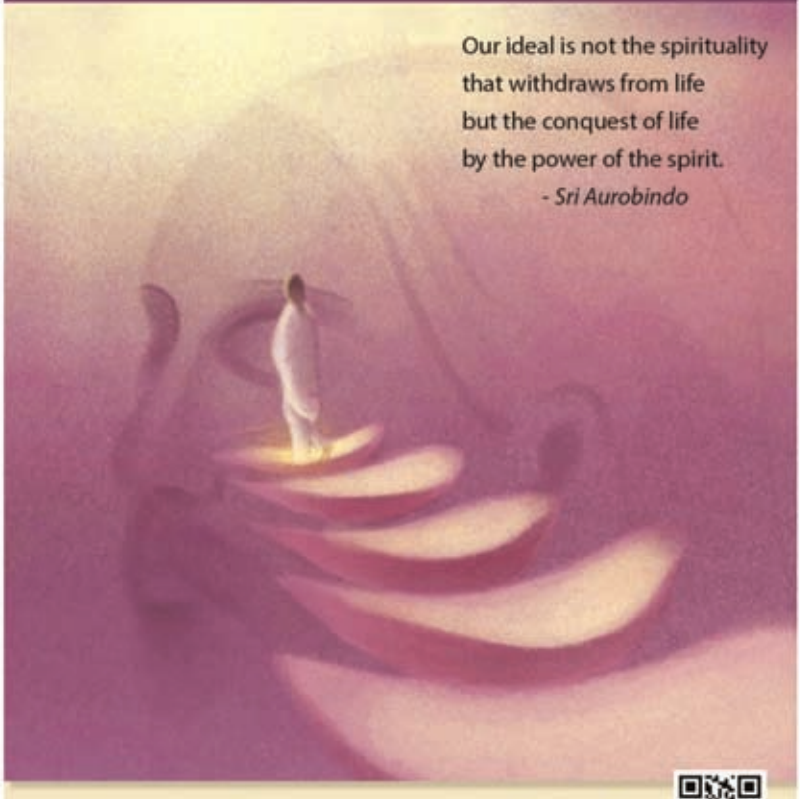

Watch the film at www.anewdawn.in